# आत्मा के तीनों कालों की कहानी

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
आबू पर्वत - 307501 (राजस्थान)

# आत्मा के तीनों कालों की कहानी

इस पुस्तक में बताया गया है कि
आप कौन हैं, कहाँ से आए हैं, और
आपको जाना कहाँ है? क्या शरीर से भिन्न
'आत्मा' नाम की कोई चीज़ है? आत्मा क्या चीज़
है? आत्मा इस सृष्टि में कहाँ से आई है? मन-बुद्धि
क्या हैं? क्या आत्मा पुनर्जन्म लेती है? क्या वह
देहान्त के बाद पशु-पक्ष्यादि योनियों में जाती है?
आत्मा के 84 जन्मों की कहानी क्या है?
मुक्ति और जीवनमुक्ति क्या है,
आत्मा के तीनों कालों की
कहानी क्या है?

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय
पाण्डव भवन, माऊण्ट आबू (राजस्थान)

# विषय सूची


| क्र.सं. | विवरण | पृष्ठ क्र. |
|---|---|---|
| 1. | अपने आपको जानने की आवश्यकता (सम्पादकीय) | 3 |
| 2. | क्या शरीर से भिन्न 'आत्मा' नाम की कोई चीज़ है? | 4 |
| 3. | मैं कौन हूँ? शरीर से भिन्न आत्मा क्या चीज़ है? | 13 |
| 4. | यह आत्मा कहाँ से आई है और इसे जाना कहाँ है? | 22 |
| 5. | क्या मन और बुद्धि आत्मा से अलग हैं? | 27 |
| 6. | क्या मनुष्यात्मा पुनर्जन्म लेती है? | 35 |
| 7. | क्या मनुष्यात्मा पशु-योनि में जन्म लेती है? | 41 |
| 8. | मनुष्यात्मा के 84 जन्मों का चक्कर | 56 |
| 9. | आत्मा के तीनों कालों की कहानी | 61 |
| 10. | संसार के सभी दु:खों की निवृत्ति का एक उपाय | 63 |



**मुद्रक :**
ओम् शान्ति प्रेस, ज्ञानामृत भवन,
शान्तिवन, तलहटी, आबू रोड (राजस्थान)



**© Copyright** : Brahma Kumaris Ishwariya Vishwa-Vidyalaya, Mount Abu, Rajasthan, India.

No part of this book may be printed without the permission of the publisher.

# अपने आपको जानने की आवश्यकता

हरेक मनुष्य में जानने की इच्छा स्वाभाविक और जन्मजात है। अत: कोई तो अतीत को जानने के लिए इतिहास में रुचि ले रहा है, कोई विधि विधान-संविधान (Law Constitution) का अध्ययन कर रहा है। कोई भूगोल पढ़ रहा है! कोई लेखा-ज्ञान (Accounting) सीख रहा है, तो कोई अपने व्यापार-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर रहा है और कोई किसी जगह पहुँचने के लिए रास्ते मालूम कर रहा है या कोई बस के नम्बर ही पूछ रहा है। परन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि मनुष्य लाखों बातों को तो जानता है। परन्तु अपने आप को नहीं जानता और जिन देह-धारियों के साथ उसका लेन-देन है वह उनको भी नहीं जानता तथा इस सृष्टि रूपी खेल अथवा नाटक के आदि-मध्य-अन्त को भी नहीं जानता। कोई तो अपने आपको एक शरीर मानता है और कोई स्वयं को मन या कोई मस्तिष्क (Brain) मानता है। कोई कहता है कि मैं केवल मिट्टी का एक पुतला हूँ, तो अन्य कोई कहता है कि मैं एक 'इन्सान' हूँ।

इस अज्ञानता अथवा मिथ्या ज्ञान का परिणाम यह है कि आज का मनुष्य स्वयं को देह मानकर काले-गोरे के झगड़े में, अमरीकन-रूसी के मन-मुटाव में, भाषा-भेद के बखेड़े में या हिन्दु-मुसलमान के तनाज़े में पड़ गया है। स्वयं को देह मानकर कर्म करने के कारण ही वह काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार में बुरी तरह फँस गया है और इसलिए दु:ख तथा अशान्ति भोग रहा है।

अत: मनुष्य के कल्याण के लिए ज़रूरी है कि वह अपने आपको जाने और सृष्टि रूपी खेल को जाने। इस उद्देश्य से ही परमपिता शिव परमात्मा ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा वर्तमान समय जो ज्ञान दिया है, उसके आधार पर ही यह पुस्तक लिखी गई है। इसके अध्ययन से आप जान सकेंगे कि 'आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं, आपने अब तक कितने जन्म लिये हैं और कहाँ तथा कब आपको जाना है'?

**– सम्पादक**

# क्या शरीर से भिन्न आत्मा नाम की कोई चीज़ है?

## स्वयं को शरीर मानने की भूल कैसे हुई?

यह कितने आश्चर्य की बात है कि मनुष्य स्वयं अपने बारे में भी पूरी तरह नहीं जानता। कोई मनुष्य स्वयं को शरीर और कोई स्वयं को प्रकृति से भिन्न एक **चेतन शक्ति** अर्थात् **'आत्मा'** निश्चय करता है और कोई स्वयं को अनादि तथा अविनाशी मानता है और अन्य कोई कहता है कि आत्मा नाम की कोई चीज़ ही नहीं है। वह स्वयं को एक जीवित शरीर ही समझता है और जब तक शरीर है तब तक ही वह अपना अस्तित्व मानता है। संसार में ऐसी विस्मयजनक परिस्थिति को देखकर मनुष्य दुबारा सोचने लगता है कि – "क्या सचमुच आत्मा का शरीर से अलग कोई अस्तित्व है भी या नहीं? यदि आत्मा शरीर से अलग चीज़ है तो वह स्वयं को देह मानने की भूल कैसे करती है? हम विवेक द्वारा कैसे मानें कि आत्मा शरीर से एक न्यारी सत्ता है? क्या हम आत्मा को देख भी सकते हैं? यदि हाँ, तो फिर आत्मा के बारे में सन्देह और विवाद क्यों बना हुआ है?" इन सभी प्रश्नों में से सबसे पहले इस प्रश्न पर विचार कर लेना ठीक होगा कि हम विवेक द्वारा कैसे मानें कि शरीर से अलग कोई आत्मा है?

### प्रकृति से बने हुए यन्त्र स्वयं अपने लिए नहीं होते, बल्कि अपने से भिन्न चेतन के लिए होते हैं

हम अपने जीवन में प्रतिदिन देखते हैं कि जितने भी जड़-पदार्थ अथवा यन्त्र हैं, उनका स्वयं अपने लिए कोई प्रयोजन (Purpose or use) नहीं होता बल्कि वे किसी चेतन के प्रयोग या भोग के लिए ही होते हैं। उदाहरण के तौर पर जैसे टेलीफोन स्वयं अपने लिए नहीं है बल्कि चेतन मनुष्यों के प्रयोग के लिए है। टेलीफ़ोन रूपी यन्त्र द्वारा बोलने वाला या सुनने वाला मनुष्य उससे

भिन्न सत्ता है। ठीक इसी प्रकार, मनुष्य के कान और मुखादि इन्द्रियाँ भी स्वयं अपने लिए नहीं हैं बल्कि चेतन आत्मा के प्रयोग के लिए हैं और आत्मा की स्वयं अपनी सत्ता कानों तथा मुख से अलग है।

**सभी जानते हैं कि कोई भी मकान, मकान ही के लिए नहीं होता, बल्कि वह किसी चेतन मनुष्य के रहने के लिए होता है। मकान में रखी हुई चारपाई या कुर्सी भी चेतन मनुष्य ही के प्रयोग के लिए होती है। अत: यदि शरीर से भिन्न कोई चेतन सत्ता नहीं है तो शरीर का कोई प्रयोजन ही सिद्ध नहीं होता। क्या शरीर, शरीर के ही लिए है? नहीं, जैसे मकान या चारपाई पर विश्राम करने वाला इन दोनों से भिन्न कोई चेतन सत्ता (मनुष्य) है, वैसे ही शरीर के अस्तित्व ही से यह सिद्ध है कि शरीर रूपी शैय्या में विश्राम करने वाला भी शरीर से भिन्न कोई चेतन सत्ता है।**

मकान में सफ़ाई की जाती है, पंखा चलाया जाता है, बिजली जगाई जाती है या पानी बहाया जाता है – किसी चेतन ही के प्रयोग के लिए। ठीक इसी प्रकार, शरीर-रूपी मकान में जो श्वास-प्रश्वास क्रिया हैं, रक्त-संचार है या पाचन-अग्नि आदि हैं, वे भी किसी चेतन सत्ता के प्रयोग के लिए हैं। उसी चैतन्य का नाम 'आत्मा' है। जब वह आत्मा इस शरीर को छोड़ जाती है तो श्वास-प्रश्वास क्रिया, रक्त-संचार, पाचन-क्रिया आदि बन्द हो जाते हैं क्योंकि जिसके लिए वे थे, अब वह तो वहाँ से चला ही गया है। आप ज़रा सोचिए कि जब मकान में रहने वाला ही कोई नहीं है तो पंखा किस प्रयोजन से चले, अग्नि किसके लिए जले, प्रकाश किसके लिए हो? इसी प्रकार, जब आत्मा ही चली जाती है तो शरीर की सभी क्रियाएं भी बन्द हो जाती हैं।

हम यों भी कह सकते हैं कि जब मकान टूट-फूट जाता है अथवा उसमें जब हवा, रोशनी आदि सुखदायक प्रबन्ध ठीक नहीं रहते तो मनुष्य उस मकान को छोड़ जाता है। ठीक उसी प्रकार, जब शरीर या इसमें होने वाली आवश्यक क्रियाएं ठीक नहीं रहतीं तो आत्मा भी इस शरीर को छोड़ जाती

है। इन सभी दृष्टान्तों से तथा युक्तियों से स्पष्ट है कि आत्मा शरीर से एक अलग चेतन सत्ता है।

## भोग्य पदार्थ स्वयं अपने लिए नहीं होते बल्कि 'चेतन भोक्ता' के लिए होते हैं

सभी जानते हैं कि यह संसार भोग्य पदार्थों से भरा पड़ा है। यहाँ अनेक प्रकार के फल-फूल, बनस्पति, अनाज आदि-आदि हैं। प्रश्न उठता है – "क्या यह फल स्वयं के लिए हैं! ऐसा तो हम कभी भी नहीं देखते कि फल स्वयं स्वयं को खा रहे हों या जल स्वयं को नहला कर हर्ष का अनुभव कर रहा हो। बल्कि हम सदा देखते हैं कि कोई चैतन्य सत्ता ही इन्हें भोगती है। अत: जिस प्रकार प्रकृति के अन्य पदार्थ किसी चैतन्य सत्ता ही के भोग के लिए हैं; उसी प्रकार स्वयं शरीर, जो भी प्रकृति ही का बना हुआ है, किसी चैतन्य सत्ता का होता है। शरीर भोग्य है, भोक्ता इससे भिन्न है। अत: आत्मा को शरीर से अलग मानना ही युक्ति-युक्त बात है।

## शरीर रूपी मोटर का परिचालक होने से आत्मा अलग है

हम प्रतिदिन यह देखते हैं कि प्रकृति के बने हुए यन्त्र स्वत: ही नहीं चलते। उन्हें चलाने वाला, इनका बटन दबाने वाला, उनमें पेट्रोल या ईंधन भरने वाला, समय-समय पर उनकी सफ़ाई आदि का ख्याल करने वाला, उनसे भिन्न कोई चेतन परिचालक (Driver) या कर्त्ता (Worker) अवश्य होता है। इसी प्रकार, इस शरीर-रूपी मोटर को भोजन रूपी ईंधन देने वाला, 'भोजन कमाने', बनाने और समय पर खाने का 'ध्यान रखने वाला', इस शरीर रूपी यन्त्र या मशीन के सफ़ाई की 'संभाल करने वाला' और उसमें जो अनेक क्रियाएं होती हैं, उन्हें 'चलाने वाला' कोई चेतन ज़रूर है। उसे ही 'आत्मा' कहा जाता है। मोटर में भी जब ड्राईवर एक विशेष कल पर दबाव

डालता है तो मोटर के सभी कल-पुर्जे स्वत: ही चलने लगते हैं। ठीक इसी प्रकार, आत्मा, जो कि भृकुटी में वास करती है, वह भी अपनी चेतनता से मस्तिष्क को प्रेरित करके सारे शरीर को चलाती है। शरीर स्वत: ही नहीं चलता रहता।

इन्जन में जब ईंधन खत्म हो जाता है या होते हुए भी वह जलता नहीं या शक्ति के रूप में परिवर्तित नहीं होता तब इन्जन तो केवल रुक जाता है, वह व्यवस्था को ठीक करने की बात नहीं सोचता बल्कि कोई चेतन सत्ता ही उसकी उस त्रुटि का अनुभव करके उसे ठीक करने की युक्ति को अपनाती है। ठीक इसी प्रकार, मान लीजिए कि मनुष्य को भोजन नहीं मिला या मिला है तो पचता नहीं और शक्ति के रूप में परिवर्तित नहीं होता। तब शरीर से भिन्न कोई चेतन ही भोजन न मिलने की अवस्था में, शरीर को ठीक करने के लिए कोई औषधि-उपचार करता है। अत: स्पष्ट है कि चेतन के बिना तो शरीर चल ही नहीं सकता और शरीर को बनाये रखने तथा सुरक्षित रखने का कोई प्रबन्ध ही नहीं कर सकता और उसकी गति-विधि को कोई नियन्त्रित (Controlled) तथा नियमित ही नहीं कर सकता।

## आत्मा मस्तिष्क से भी अलग सत्ता है

विज्ञान के इस युग में बहुत-से लोगों की मान्यता है कि मनुष्य का मस्तिष्क ही सब-कुछ करता है। शरीर को नियन्त्रण और नियम में रखने वाला मनुष्य का मस्तिष्क ही है। परन्तु आप विचार करने पर इसी निर्णय पर पहुँचेंगे कि यह मान्यता ठीक नहीं है। मस्तिष्क तो आँखों द्वारा भेजे हुए चित्रों को और कानों द्वारा भेजे हुए ध्वनि-प्रभावों को पकड़ता-मात्र है, परन्तु उनकी **व्याख्या** (Interpretation) तो आत्मा ही करती है। मस्तिष्क उन प्रभावों के भाव को नहीं जान सकता। मस्तिष्क तो केवल कन्ट्रोल रूम (नियन्त्रणालय) और **कन्ट्रोल** करने के लिए एक **यन्त्र** है, वह **कन्ट्रोलर** नहीं है। कानों द्वारा जो शब्द

सुने जाते हैं, उन शब्दों का अर्थ क्या होता है, उनको बोलने वाले का अभिप्राय क्या है, अथवा वह किस 'भाव' को व्यक्त करना चाहता है, उनको **समझने वाला** और **अनुभव** (Feel) करने वाला तो मस्तिष्क से भिन्न कोई चैतन्य ही है। वही चैतन्य सत्ता 'आत्मा' है। वह न केवल उन शब्दों या चित्रों आदि का अर्थ और भाव समझती है, बल्कि उनका अनुभव भी करती है।

## मुक्ति की इच्छा से सिद्ध है कि आत्मा शरीर और मस्तिष्क से भिन्न है

संसार में हरेक मनुष्य की यह तो इच्छा होती है कि उसे दु:ख न हो। विचारवान व्यक्ति तो दु:ख से सदा के लिए निवृत्ति प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। वे समझते हैं कि शरीर और मस्तिष्क भी आज की दुनिया में दु:ख ही के साधन बने हुए हैं। अत: वे इनसे भी छुटकारा पाना चाहते हैं। मुक्ति की इस इच्छा से भी सिद्ध है कि शरीर और मस्तिष्क से भिन्न कोई चेतन और विचारशील सत्ता है जो कि शरीर के बन्धन से भी छूटना चाहती है। यदि आत्मा नाम की कोई चेतन सत्ता न होती तो शरीर स्वयं से ही छुटकारा पाने की इच्छा न कर सकता या मस्तिष्क अपने ही से मुक्त होने की कामना न करता।

पुनश्च, **शरीर-रहित मुक्ति** की अवस्था की इच्छा से एक तो यह सिद्ध होता है कि शरीर से भिन्न ज़रूर कोई अविनाशी सत्ता है जो कि शरीर के नाश होने पर भी रहती है और दूसरा, यह सिद्ध होता है कि वह चेतन सत्ता उस शरीर से पहले भी थी क्योंकि यदि इस शरीर से पहले उसने कभी मुक्ति का अनुभव न किया होता तो वह अब भी मुक्ति की कामना न करती, क्योंकि उसे कामना या इच्छा सदा उसी पदार्थ या अनुभव के लिए होती है जो पहले कभी उसे प्राप्त थी। अत: मुक्ति की इच्छा से यह स्पष्ट है कि शरीर से भिन्न कोई चेतन और नित्य सत्ता है जो शरीर से पहले भी थी और वह इस शरीर

के अन्त होने के बाद भी रहेगी।

अब यह प्रश्न है कि यदि सचमुच ही शरीर से भिन्न आत्मा का कोई अपना नित्य अस्तित्व है तो क्या हम उस आत्मा को देख भी सकते हैं? यदि हाँ तो कैसे और यदि हम नहीं देख सकते तो क्यों?

## क्या हम आत्मा को देख सकते हैं?

हम आत्मा को देख सकते हैं या नहीं? इसका उत्तर जानने से पहले हमें थोड़ा-कुछ इस बारे में विचार कर लेना चाहिए कि देखना किसे कहते हैं। मान लीजिए कि हमारी आंखों के सामने गुलाब का एक फूल पड़ा है। हम आँखों द्वारा तो उसके केवल बाहरी **रूप** और **रंग** ही को देखते हैं। परन्तु केवल इतना देखना या इतना ही प्रत्यक्ष ज्ञान तो काफ़ी नहीं है। बल्कि, फूल की सुगन्धि भी तो उसकी एक विशेषता होती है। लेकिन हम सुगन्धि को तो इन आँखों से देख ही नहीं सकते। उसे तो हम नासिका द्वारा ही ग्रहण कर सकते हैं। अत: इस बात की ओर ध्यान दीजिए कि केवल आँखों द्वारा किसी वस्तु के रूप ही का प्रत्यक्ष करना उस वस्तु को देखने, मानने या अनुभव करने के लिए सब-कुछ नहीं होता, बल्कि हमें नासिका द्वारा उसकी सुगन्धि का अनुभव करने से तथा हाथों द्वारा उसकी कोमलता आदि का अनुभव करने से भी उस वस्तु के अस्तित्व का और उसकी विशेषता का भान होता है तथा उस वस्तु की प्रत्यक्षता महसूस होती है। फूल की सुगन्धि, कोमलता और आकृति का अनुभव करना भी फूल को एक प्रकार से देखना ही है।

दूसरी बात यह है कि हम आँखों द्वारा जिस रूप का, कानों द्वारा जिस शब्द का, नाक द्वारा जिस सुगन्धि का और हाथों द्वारा जिस कोमलता का अनुभव करते हैं, वे तो उस वस्तु के केवल गुण ही हैं, वस्तु तो उनसे भिन्न है। अत: सिद्ध है कि किसी वस्तु के गुणों का प्रत्यक्ष करना ही उसे देखना है और उसके गुणों को देखने अथवा अनुभव करने से ही हम वस्तु के

अस्तित्व को प्राय: मान लिया करते हैं। उदाहरण के तौर पर दूध में मिठास रूपी गुण का अनुभव करके हम उसमें चीनी का अस्तित्व मान लिया करते हैं। लोहे में ऊष्णता का अनुभव करके हम उसमें अग्नि का अस्तित्व स्वीकार कर लिया करते हैं और बिजली के पंखे को चलाते हुए देखकर हम बिजली के अस्तित्व को मान लेते हैं।

ठीक इसी प्रकार, हम आत्मा को भी देख सकते हैं। जहाँ इच्छा, विचार, सुख-दु:ख का अनुभव, पुरुषार्थ आदि, गुण या लक्षण हैं वहाँ हमें आत्मा का अस्तित्व मानना चाहिए, क्योंकि इन गुणों को देखना ही आत्मा को देखना है। ये गुण प्रकृति के किसी भी पदार्थ में हम कभी भी नहीं देखते। अत: जिसमें ये गुण हैं, उसे हमें प्रकृति से एक भिन्न सत्ता, एक चेतन सत्ता अर्थात् एक आत्मा मानना चाहिए। इन गुणों की प्रत्यक्षता को हमें आत्मा की प्रत्यक्षता अर्थात् आत्मा का दर्शन मानना चाहिए। आत्मा के गुणों को देखकर तो आत्मा को सभी मनुष्य देख सकते हैं।

## दिव्य-दृष्टि द्वारा आत्मा का साक्षात्कार

इसके अतिरिक्त, अपने आहार-व्यवहार की शुद्धि तथा मन की पवित्रता आदि नियमों का पालन करने तथा योगाभ्यास करने से भी, हम परमपिता परमात्मा की कृपा से **दिव्य-दृष्टि** द्वारा आत्मा को **दिव्य प्रत्यक्ष** अथवा **साक्षात्कार** कर सकते हैं। आत्मा इन प्रकृतिकृत नेत्रों द्वारा देखी जा सकने वाली या अन्यान्य इन्द्रियों द्वारा अनुभव की जाने वाली सत्ता तो है नहीं क्योंकि एक तो इन इन्द्रियों द्वारा केवल प्रकृति ही के तत्वों का अनुभव हो सकता है जबकि आत्मा प्रकृति से एक भिन्न सत्ता है, दूसरे आत्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और हमारी इन्द्रियाँ तो कई अत्यन्त सूक्ष्म प्रकृतिकृत सत्ताओं का भी अनुभव नहीं कर सकतीं। और तीसरी बात यह है कि अनुभव या प्रत्यक्ष करने वाली तो आत्मा ही है, इन्द्रियाँ तो साधन हैं। अत: इन्द्रियाँ भला आत्मा का क्या

अनुभव करेंगी? आत्मा का साक्षात्कार तो स्वयं आत्मा ही कर सकती है और वह तब कर सकती है जब उसे ज्ञानरूपी दर्पण और योगरूपी सूक्ष्म दिव्य-चक्षु प्राप्त हो। लौकिक रीति में भी हमारी आँखे भले ही अन्य वस्तुओं को देख सकती हैं परन्तु वे स्वयं को तब देख सकती हैं जब उन्हें कोई दर्पण मिले और आँखे स्वयं भी ठीक अवस्था में हों। इसी प्रकार, जिन मनुष्यों का आत्मिक-चक्षु अथवा दर्पण ठीक नहीं है, वे उसके अणु-रूप अथवा ज्योति-रूप का प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं कर सकते; हाँ उसके गुणों की प्रत्यक्षता (जैसे कि हम ऊपर बता आये हैं) तो सभी अनुभव करते हैं ही। कौन है जिसे अपने अस्तित्व का भान अथवा अनुभव नहीं होता? **'मैं हूँ'**, – यह तो सभी कहते और मानते ही हैं। अपने बारे में ऐसा तो कोई भी मनुष्य नहीं कहता कि – 'मैं नहीं हूँ' अथवा – ''मेरा तो अस्तित्व ही नहीं है''। यदि कोई मनुष्य ऐसा कहे भी तो भी उसके कहने से यही सिद्ध होगा कि वह है क्योंकि निज अस्तित्व के बिना तो कोई कुछ कह भी नहीं सकता।

## आत्मा अपने स्वरूप को भूली कैसे और संसार में आत्मा के बारे में मत-भेद क्यों है?

अब जहाँ तब आत्मा के गुणों या लक्षणों अर्थात् इच्छा, अनुभव, स्मृति आदि का प्रश्न है, इनसे तो सभी परिचित हैं हीं, परन्तु आत्मा इस सृष्टि में कहाँ से आई, कब आई, उसने कितने जन्म लिए और उसके संस्कारों में कब परिवर्तन आया, ऐसे-ऐसे जो प्रश्न हैं, उनके बारे में आज संसार में अज्ञान और वाद-विवाद हैं, इसका कारण यही है कि आत्मा जन्म-मरण के चक्कर में आने के कारण अपने **परिचय को भूल** गई है और अपने अशुद्ध संस्कारों तथा वासनाओं के कारण वह स्वरूप-स्थित भी नहीं है। आत्मा के बारे में पूर्ण और यथार्थ परिचय तो केवल एक सत्य-स्वरूप, अजन्मा परमपिता परमात्मा ही दे सकते हैं। जब तक वह अवतरित होकर आत्माओं के स्वरूप का, धाम

का, आवागमन तथा अवस्थाओं आदि का परिचय न दें तब तक आत्मा को अपने विषय में उपर्युक्त प्रश्नों पर पूर्ण प्रकाश नहीं मिल सकता। परमपिता परमात्मा शिव ने आत्मा की स्वरूप-विस्मृति के बारे में निम्नलिखित स्पष्टीकरण दिया है।

जन्म-जन्मान्तर शरीर का संग करते रहने के कारण ही आत्मा अपने निजी स्वरूप को भी भूल गई और आज कई आत्माएं तो अपने अस्तित्व को भी नहीं मानतीं। देह के साथ आत्मा का चिरकाल से इतना घनिष्ठ और निकट का सम्बन्ध रहा है और देह द्वारा ही चूँकि उसे सुख-दु:ख का अनुभव होता रहा है और देह का भान उसे रहता रहा है, इस अभ्यास से उसने देह के साथ तदात्म्य अथवा एकता मान ली है। जैसे कोई राजकुमार शिशु अवस्था में अपने राजमहल और माता-पिता से बिछुड़ जाय और जंगल के भेड़ियों से जा मिले और उनके निरन्तर और चिरस्थायी संग से स्वयं को भी एक भेड़िया ही मानने लगे, ठीक ऐसी ही स्थिति आज आत्मा की हुई है।

परन्तु अब परमपिता परमात्मा शिव पुन: अपना भी परिचय दे रहे हैं और मनुष्यात्माओं के 84 जन्मों के आदि, मध्य और अन्त की कहानी भी सुना रहे हैं तथा आत्मा के स्वरूप में स्थिति की तथा सम्पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति की प्राप्ति की सहज विधि भी समझा तथा सिखा रहे हैं।

# 'मैं कौन हूँ? शरीर से भिन्न आत्मा क्या चीज़ है?

अपने सारे दिन की बात-चीत में मनुष्य प्रतिदिन न जाने कितनी बार 'मैं' शब्द का प्रयोग करता होगा। परन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि प्रतिदिन 'मैं' और 'मेरा' शब्द का अनेकानेक बार प्रयोग करने पर भी मनुष्य यथार्थ रूप में यह नहीं जानता कि 'मैं' कहने वाली सत्ता का स्वरूप क्या है, अर्थात् 'मैं' शब्द जिस वस्तु का वाचक है, वह वस्तु क्या है? यह कैसी विडम्बना है कि आज मनुष्य ने साइन्स द्वारा बड़ी-बड़ी शक्तिशाली चीज़ें तो बना डाली हैं, उसने संसार की अनेक पहेलियों का उत्तर भी जान लिया है और वह अन्य अनेक जटिल समस्याओं का हल ढूँढ़ निकालने में खूब लगा हुआ है परन्तु यह "मैं, मैं" कहने वाला कौन है, इसके बारे में वह सत्यता को नहीं जानता अर्थात् वह स्वयं को नहीं पहचानता! आज आप किसी मनुष्य से यह प्रश्न पूछिये कि – "आप कौन हैं? अथवा आपका क्या परिचय है?" तो वह झट अपने शरीर का नाम बता देगा अथवा शरीर-निर्वाह के लिए उसने दुकानदारी, व्यापार आदि का जो साधन अपना रखा है अथवा दिन-रात जो धन्धा वह करता है, वह उसका नाम बता देगा। उदाहरण के तौर पर डॉक्टरी का धन्धा करने वाला कहेगा कि मैं डॉक्टर हूँ और कोई मनुष्य या तो कहेगा कि – "मेरा नाम बनारसीदास है।" तो प्रश्न उठता है कि 'बनारसीदास' तो शरीर का नाम है, तब क्या 'मैं' कहने वाली सत्ता शरीर ही है?

### क्या शरीर ही सब-कुछ है?

आप इस बात को जानते होंगे कि आज संसार में करोड़ों मनुष्य ऐसे हैं जो कहते हैं कि यह शरीर ही सब-कुछ है, इससे भिन्न आत्मा नाम की कोई

चीज़ ही नहीं है। वे कहते हैं कि – "जब तक मनुष्य का शरीर है और जब तक उसमें श्वास-प्रश्वास क्रिया, मस्तिष्क का व्यापार, रक्त का संचार, हृदय की गति आदि-आदि ठीक कार्य कर रही हैं, तब तक ही मनुष्य का जीवन है और इसके सिवा कोई चेतन शक्ति या कोई अनादि-अविनाशी वस्तु नहीं है।" वे कहते हैं कि – "शरीर से भिन्न किसी चेतन वस्तु के अस्तित्व का कोई प्रमाण ही नहीं है।" इस प्रकार, वे स्वयं को देह मानकर, देह-अभिमानी बने हुए हैं और उसके परिणामस्वरूप दु:ख भोग रहे हैं।

अत: अब हम विवेक और अनुभव के आधार पर यह सत्यता स्पष्ट करेंगे कि वास्तव में देह से भिन्न एक चेतन सत्ता भी है। यह एक नित्य वस्तु है और 'मैं' अथवा 'आत्मा' शब्द उसी का वाचक है और इसलिए, स्वयं को शरीर मानना एक ऐसी भूल करना है जिस ही के परिणामस्वरूप मनुष्य को अनेकानेक प्रकार के दु:ख होते हैं।

### सुख-दु:ख आदि का अनुभव आत्मा ही को होता है

जब मनुष्य आँखों द्वारा देखता है, कानों द्वारा सुनता है, मुख द्वारा खाता है या अन्य किसी इन्द्रिय द्वारा अन्य कोई कार्य करता है तो इन कर्मों के साथ-साथ उसे **अनुभव** अवश्य हुआ करता है। उदाहरण के तौर पर, मान लीजिए कि कोई निर्धन व्यक्ति किसी मनुष्य के पास आकर कहता है कि – "मेरी माताजी बहुत सख्त बीमार हैं। उनकी चिकित्सा के लिए मेरे पास धन नहीं है। आप मेरी कुछ सहायता कीजिए।" अब कान तो इन शब्दों को केवल सुनने ही का साधन है परन्तु कानों द्वारा इन शब्दों को सुनकर **दया, करुणा, सहानुभूति** आदि का जो अनुभव होता है वह कानों को नहीं होता, बल्कि एक चेतन सत्ता को होता है जिसे 'आत्मा' कहते हैं।

इसी प्रकार, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति, एक मनुष्य के पास स्नेह-पूर्वक एक पुष्प ले जाकर उसे भेंट करता है। अब आँखें तो केवल देखने का

साधन-मात्र हैं, वे अन्य दृश्यों की तरह इस दृश्य को भी प्रस्तुत करती हैं, परन्तु दूसरे मनुष्य के **स्नेह को जानने** और फूल की सुन्दरता को देखकर हर्षित होने का जो **अनुभव** होता है, वह आँखों से भिन्न एक चेतन सत्ता को होता है। वह चेतन सत्ता ही आत्मा है। अगर हर्ष का अनुभव आँखों या कानों को होता तो विषय के हट जाने पर यह हर्ष समाप्त हो जाता, परन्तु हम देखते हैं कि बहुत बार फूल को हटा लेने के बाद भी हम उस मनुष्य के स्नेह का तथा फूल की सुन्दरता और सुगन्धि का विचार करके हर्ष का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार, हमारे सामने जब कोई व्यक्ति आता है तो न केवल हम उसे देखते हैं, बल्कि उसे देखते ही हम विचार करते हैं कि हम उससे परिचित हैं या अपरिचित अथवा यह हमारा मित्र है या शत्रु और विचार के साथ-साथ हमें उसके प्रति हर्ष या दु:ख का, **'लगाव या अलगाव'** का अनुभव भी होता है। विचार करना और सुख-दु:ख का अनुभव करना आँखों का कर्म नहीं है बल्कि उससे भिन्न एक **'विचारशील** और **अनुभवशील'** अर्थात् चेतन सत्ता का स्वभाव है जिसे **'आत्मा'** कहा जाता है।

सुख-दु:ख, आश्चर्य, उत्सुकता, दया आदि का अनुभव करने का गुण प्रकृति का गुण नहीं है। हम संसार में प्रकृति के किसी भी पदार्थ को विचार करते हुए अथवा 'हर्ष या शोक' करते हुए नहीं देखते। अत: मानना पड़ेगा कि चेतनता हमारे प्रकृतिकृत शरीर का गुण नहीं है, बल्कि इससे भिन्न किसी अन्य पदार्थ का गुण है।

## इन्द्रियों के अनुभवों को इकट्ठा करने और याद रखने वाली आत्मा इन्द्रियों से अलग है,

सभी जानते हैं कि आँखें केवल देखने ही का उपरकरण हैं, उन द्वारा हम सुन नहीं सकते। इसी प्रकार, कान केवल सुनने ही के उपकरण हैं, उन द्वारा हम देख नहीं सकते। अत: विचार कीजिए कि जब हम किसी मनुष्य को अपने

सामने खड़ा देखते हैं, उसके वचन सुनते हैं और हमारे मुख से यह शब्द निकलते हैं कि – ''इस मनुष्य को तो हमने पहले भी देखा है और इसके वचन तो हमने पहले भी सुने हुए हैं'' तो यह बात कौन कहता है? **पूर्व काल की स्मृति** का गुण आँख या कान का गुण तो है नहीं और दूसरी बात यह भी है कि आँख को तो यह मालूम नहीं है कि कान ने क्या सुना है और कान को भी यह मालूम नहीं है कि आँख ने क्या देखा है। तो स्पष्ट है कि आँखों और कानों से भिन्न तथा अलग एक चेतन सत्ता है जो इन द्वारा किए हुए **अनुभवों** को जोड़ती है और **पूर्व काल में हुए अनुभवों को याद रखती है** और वर्तमान काल में हुए अनुभवों से उनका मिलान करके मुख-रूपी तीसरी इन्द्रिय द्वारा कहती है कि – ''इस मनुष्य को मैंने पहले भी देखा है।'' उसी का नाम 'आत्मा' है। उस आत्मा में ही **'पहचान, स्मृति'** आदि गुण हैं। वही इन्द्रियों द्वारा जानती, पहचानती, और अनुभव करती है।

## इच्छा और पुरुषार्थ, शरीर से भिन्न आत्मा ही के लक्षण हैं

हम देखते हैं कि मनुष्य इच्छा सदा उस वस्तु की करता है जिसे वह सुख देने वाली मानता है। इच्छा करने के बाद वह उसे प्राप्त करने के लिए **विचार करता** है अथवा **योजना बनाता है** और तब उसके लिए **पुरुषार्थ** करने लगता है। आख़िर उसे प्राप्त करके वह सुख का अनुभव करता है और कहता है कि – ''मेरी इच्छा पूर्ण हुई।'' अब सोचने की बात है कि **इच्छा** और **पुरुषार्थ** करने वाला कौन है?

'मेरी इच्छा पूर्ण हुई' – इन शब्दों से तो यह सिद्ध होता है कि जिसकी इच्छा पूर्ण हुई और जिसने इच्छा की थी, वह एक ही है। इससे स्पष्ट है कि यह अनुभव अथवा ये शब्द शरीर के नहीं हो सकते क्योंकि शरीर तो इच्छा के पूर्ण होने के समय वही नहीं होता जोकि इच्छा उत्पन्न होने के समय होता है, बल्कि वह तो काल के कारण बाल्यावस्था से युवा अवस्था अथवा वृद्धादि

अवस्था में बदल जाता है। इससे प्रमाणित है कि शरीर से भिन्न एक अन्य सत्ता है जो कि चेतन है, और जो कि पदार्थों के बारे में **विचार करती है** कि वह सुखदायक हैं या दु:खदायक, फिर वह उनमें **चुनाव करती है** और सुखदायक वस्तु को प्राप्त करने के लिए **पुरुषार्थ करती है** और अन्त में उसके प्राप्त होने पर सुख का **अनुभव** करती है। शरीर तो अन्य पदार्थों की तरह स्वयं भी सुख-दु:ख का **'साधन'** है, वह सुख-दु:ख का **'भोक्ता'** नहीं है। **शारीरिक सुख** और शरीर द्वारा सुख की **इच्छा** करने वाला तथा शरीर को भी स्वस्थ रखकर उस सुख को भोगने वाला तो शरीर से अलग ही है। शरीर अनुभव नहीं करता है बल्कि शरीर का भी अनुभव करने वाली शरीर से अलग एक चेतन सत्ता है। उसी को 'आत्मा' कहते हैं।

## चेतना, अनुभव, स्मृति, इच्छा आदि गुण या लक्षण शरीर के आकस्मिक गुण भी नहीं हैं

ऊपर हमने चेतनता, सुख-दु:ख के अनुभव की योग्यता, स्मृति, ज्ञान-पहचान, इच्छा और पुरुषार्थ आदि जिन गुणों वा लक्षणों का उल्लेख किया है, वे गुण वा लक्षण प्रकृति के किसी भी पदार्थ में हम नहीं देखते। अत: ये गुण शरीर के भी नहीं हो सकते, क्योंकि शरीर भी प्रकृतिकृत ही है। यदि ये गुण शरीर के **स्वाभाविक** गुण होते तो शरीर में वे सदा ही रहते क्योंकि **स्वाभाविक** गुण सदा ही अपने आधार में रहते ही हैं जैसे कि चीनी में मिठास रहती है। परन्तु हम देखते हैं कि मृत्यु आदि अवस्थाओं के समय शरीर में चेतना, स्मृति इत्यादि गुण नहीं होते। इससे सिद्ध है कि ये गुण शरीर के **स्वाभाविक** गुण नहीं हैं।

कई लोग कहते हैं कि – ''ये गुण शरीर या प्रकृति के **स्वाभाविक** गुण तो नहीं हैं, परन्तु प्रकृति के तत्व जब एक विशेष रीति से मिलकर विशेष अवस्था में होते हैं तो **आकस्मिक** ही उनमें चेतना का गुण आ जाता है।''

वे कहते हैं कि – ''चेतना, विचार आदि किसी आत्मा-वात्मा के गुण नहीं हैं, बल्कि जब प्रकृति के तत्व मिलकर शरीर का रूप धारण करते हैं और शरीर की सभी क्रियायें ठीक चलती हैं तब उस अवस्था में शरीर रूपी प्रकृति में अनुभव की शक्ति, स्मृति की योग्यता इत्यादि लक्षण आ जाते हैं।'' परन्तु वास्तव में यह कथन ग़लत है, क्योंकि यह एक नियम है कि जो गुण कारण में न हो वह कार्य में भी नहीं हो सकता। जबकि हम प्रकृति के तत्वों में चेतना नहीं देखते तो स्पष्ट है कि प्रकृति के कार्यों अर्थात् पदार्थों में भी वह गुण नहीं हो सकते। अच्छा मान लीजिए कि कोई गुण जो प्रकृति के तत्वों में न हो वह उनको मिलाकर बनाई गई वस्तु में हो भी, तो भी उनको उस तरह बनाने वाला कोई 'चेतन' 'निमित्त' चाहिए क्योंकि बिना किसी विचारवान चेतन के प्रकृति के तत्व भी एक **विशेष प्रयोजन** के लिए स्वत: ही मिलकर एक विशेष पदार्थ अथवा अवस्था नहीं बना सकते। दूसरी विशेष बात यह भी है कि प्रकृति के तत्व अथवा पदार्थ तो **भोग्य** पदार्थ हैं, वे स्वयं **भोक्ता** कैसे हो सकते हैं? वे तो अनुभव के विषय हैं, वे अनुभव करने वाले नहीं हैं। प्रकृति के पदार्थ तो ''इच्छा की पूर्ति के लिए आवश्यक **सामग्री**'' हैं, वे स्वयं ''इच्छा करने वाले'' नहीं हो सकते; वे विचार के विषय तो हैं परन्तु विचार करने वाले नहीं हैं। बल्कि जब हम विचार कर रहे होते हैं तो हमें अपनी सत्ता का देह से अलग अनुभव भी होता है। हम अपने शरीर के बारे में भी जब विचार करते हैं तो हमें ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है कि हम विचार करने वाले हैं और शरीर हम से अलग हैं जिसके बारे में हम विचार कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, हम देखते हैं कि जब कोई मनुष्य **ध्यानावस्था** में होता है अथवा दिव्य-चक्षु द्वारा कुछ साक्षात्कार कर रहा होता है तो उसके कान ठीक होते हुए भी वह अपने पास हो रही ध्वनि को या शब्दों को नहीं सुनता, उसके हाथ भले ही किसी चीज़ को छू रहे हों, परन्तु उस चीज़ का भान उसे नहीं होता। तथापि वह अपने दिव्य नेत्र से कुछ देख रहा होता है और विशेष प्रकार का आनन्द

अनुभव कर रहा होता है जिसका कि वह बाद में वर्णन भी करता है। इससे स्पष्ट होता है कि अनुभव करने वाली, स्मृति रखने वाली, विचार करने वाली चेतन सत्ता इस देह से अलग है।

और तो क्या, बहुत बार एक शरीर में किसी **दूसरी आत्मा (भूत) का भी प्रवेश** या **सन्निवेश** हो जाता है और ऐसा बहुत बार अनुभव में भी आया है। इन सभी प्रमाणों से आत्मा की अलग सत्ता सिद्ध है।

## आत्मा की सत्ता मस्तिष्क से अलग है

ऊपर हमने कुछेक युक्तियाँ देकर आत्मा के अस्तित्व की सत्यता को जतलाने की कोशिश की है परन्तु आज कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि विचार, स्मृति, अनुभव इत्यादि मस्तिष्क (Brain) ही के कार्य (Function) हैं। वे कहते हैं कि – "शरीर में स्नायुओं का जो जाल बिछा हुआ है, उन द्वारा मस्तिष्क ही अनुभव करता, विचारता तथा निर्णय करके कर्मेन्द्रियों द्वारा काम करता है अथवा मस्तिष्क में बहुत सूक्ष्म रूप में मानो परमाणुओं के रूप में प्रकृति ही यह सोच-विचार करती है अथवा किसी विशेष प्रकार की विद्युत-शक्ति, किसी इलैक्ट्रॉनिक सिस्टम की तरह काम करती है।" परन्तु इस मत पर विचार करने पर आप मानेंगे कि यह ग़लत है, क्योंकि एक तो हम देखते हैं कि प्रकृति की जितनी भी चीज़ें हैं, चाहे वे इलैक्ट्रॉनिक सिस्टम की तरह काम क्यों न करती हों, **वे किसी चैतन्य के प्रयोग के लिये होती हैं, वे स्वयं अपने लिए नहीं होतीं**, दूसरी बात यह है कि वे **अपने भविष्य के बारे में चिन्तन करने** अथवा **भूत** (past) के बारे में सोचने में समर्थ नहीं होती और विशेष बात यह है कि उनमें किसी बात को **विशेष दृष्टिकोण** से देखने, उसका **विशेष भाव** निकालने और उसे विशेष प्रकार से **महसूस करने की** योग्यता नहीं होती। उदाहरण के तौर पर प्रकृति की बनी हुई कोई चीज़ ऐसी तो हो सकती है जो शब्दों को रेकार्ड कर ले परन्तु वह एक ही शब्द का **भिन्न-भिन्न प्रसंगों का भिन्न-भिन्न अर्थ ले** और उस अर्थ को लेते

समय एक विशेष प्रकार के **सुख-दुःख, सहानुभूति** आदि का अनुभव उसे हो, ऐसा कभी नहीं होता। उदाहरण के तौर पर किसी तुला या तराजू पर यदि हम हाथ रख दें तो वह यह तो प्रकट कर देगा कि उस पर कुछ वज़न पड़ गया है, परन्तु वह यह भाव प्रकट नहीं कर सकता कि वह उस तराजू पर ग़लती से पड़ गया है या तराजू को ठीक करने के लिए रखा गया है या किसी अन्य कारण से रखा गया है। परन्तु चेतन सत्ता में यह गुण है कि यदि कोई मनुष्य किसी के सिर पर हाथ रखता है तो वह इस बात पर भी **विचार** करता है कि वह हाथ आशिष देने के लिए रखा गया, स्नेह प्रकट करने के लिए रखा गया, सिर को दबाकर सहलाने के विचार से रखा गया या अपमानित करने के भाव से रखा गया है और वह चेतन सत्ता उसका **अनुभव** भी करती है।

अतः स्पष्ट है कि अनुभव आदि का गुण मस्तिष्क में नहीं है, बल्कि जैसे आँखें देखने के लिए और कान सुनने के लिए चेतन आत्मा के **साधन मात्र हैं,** वैसे ही मस्तिष्क सोचने, विचारने, अनुभव करने आदि के लिए आत्मा का एक साधन मात्र है परन्तु सोच, विचार और अनुभव करने वाली तो आत्मा ही है। आत्मा शरीर और मस्तिष्क दोनों से अलग एक नित्य सत्ता है और 'मैं' शब्द आत्मा ही का वाचक है।

## आत्मा क्या चीज़ है?

उपर जो-कुछ बताया गया है उससे स्पष्ट है कि आत्मा शरीर से भिन्न एक विचारशील और अनुभवशील, अनादि-अविनाशी सत्ता है। आत्मा ज्योतिस्वरूप है और सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। जैसे आकाश में चमकता हुआ तारा हमें एक प्रकाशमान बिन्दु-सा दिखाई पड़ता है, वैसे ही आत्मा भी ज्योति का एक तारा अथवा एक ज्योति-बिन्दु ही है। यह **ज्योति-बिन्दु** आत्मा हरेक मनुष्य-देह में **भृकुटी** में निवास करती है जहाँ पर कि भक्त लोग टीका लगाते हैं अथवा माताएं बिन्दी लगाती हैं। मस्तक में वास होने के कारण ही कहावत भी है

कि "भृकुटि में चमकता है एक अजब सितारा।" मस्तक में आत्मा का वास होने के कारण ही मनुष्य जब अपने भाग्य के बारे में सोचता है या जब उसकी बुद्धि पर ज़ोर पड़ता है तो वह यहीं हाथ रखता है।

इस प्रकार, आत्मा को जानते हुए हरेक मनुष्य को चाहिए कि स्वयं को 'आत्मा' निश्चय करे। आज़ स्वयं को अर्थात् आत्मा को न जानने के कारण ही देह के आधार पर मनुष्य काले-गोरे, अमरीकी-रूसी, गुजराती-महाराष्ट्रियन आदि के भेदों में जकड़ा हुआ है और इन भेदों के आधार पर ही आज लड़ाई-झगड़े हैं। देखा जाय तो वास्तव में यह देह तो आत्मा का चोला है। कोई काला सूट पहने या कोई सफ़ेद, इस बात पर भला झगड़ा क्यों? इसी प्रकार, देह के तथा देह की भिन्न भाषाओं या प्रान्तों के आधार पर झगड़ा क्यों?

पुनश्च, स्वयं को देह मानने के कारण ही मनुष्य में काम-क्रोधादि विकारों की उत्पत्ति होती है। मैं पुरुष हूँ, जवान हूँ, अमुक स्त्री है, आदि देह-अभिमान (Body-consciousness) के परिणामस्वरूप ही मनुष्य में काम की उत्पत्ति होती है। काम से उत्पन्न बाल-बच्चों में मनुष्य का मोह होता है। उनके मोह में आकर ही मनुष्य अनेक प्रकार के साधन जुटाने की कामनाएं करता तथा लोभ करता है। फिर साधनों तथा सम्पत्ति से युक्त होने पर उसमें अभिमान आ जाता है। जब उसके अभिमान को ठेस लगती है या उसकी कामना पूर्ण नहीं होती तो उसे क्रोध आता है। अत: देह-अभिमान (स्वयं को देह मानना) ही सभी विकारों अथवा पापों का तथा दु:खों का मूल है।

तो ऊपर यह जो बताया गया है कि शरीर से भिन्न एक चेतन सत्ता 'आत्मा' है, यह बताने का भाव यही है कि हम स्वयं को आत्मा ही निश्चय करें और आत्मिक दृष्टि से ही दूसरों को देखें ताकि हमारे जीवन में पवित्रता और शान्ति रहे। आत्मा का स्वधर्म **पवित्रता** (काम-क्रोध से रहित, पवित्र अवस्था) और **शान्ति** है। स्वयं को देह मानने से ही मनुष्य हिन्दु-मुसलमान-सिख या स्त्री-पुरुष तो काला-गोरा या गुजराती-मराठी के भेदों में अर्थात दैहिक धर्मों में फँसकर उलझा हुआ, दु:खी हो रहा है।

# यह आत्मा कहाँ से आई और इसे कहाँ जाना है

प्रायः लोगों को यह कहते सुना जाता है कि संसार एक मुसाफ़िरखाना है और आखिर एक दिन तो हम सभी को यहाँ से जाना ही है। परन्तु हम कहाँ से आये हैं और हमें कहाँ जाना है, इसके बारे में मनुष्य को स्पष्ट रूप से जानना भी तो चाहिए। विचित्र बात है कि आज मनुष्यात्मा अपने उस प्यारे धाम अथवा देश को भी भूल चुकी है जहाँ से वह आई है और जहाँ उसे जाना है। आज वह अपनी मंजिल को भूल कर यहाँ ही के विषय-पदार्थों से मोह-ममता करके फँस गई है और इसलिए उड़कर अपने घर वापस नहीं जा सकती!

इसी तरह, आज मनुष्यात्माएं मुक्ति अथवा निर्वाण की भी इच्छा तो करती हैं और यह भी कहती हैं कि – "हे प्रभु, हमें अपने पास बुला लो, परन्तु यह जानना भी तो चाहिए कि मुक्ति की प्राप्ति होने पर मनुष्यात्मा कहाँ जाती है, वह ज्योति-लोक कैसा है और वहाँ आत्मा की क्या स्थिति होती है?"

अतः अब परमपिता परमात्मा शिव ने हमें दिव्य दृष्टि देकर जो साक्षात्कार कराये हैं, उनके आधार पर हम यह बतायेंगे कि यह आत्मा-रूपी अनादि-अविनाशी चेतन शक्ति इस सृष्टि रूपी कर्म-क्षेत्र में अथवा कर्मेन्द्रियों के संग्रह रूप देह में उभरी कहाँ से और अन्त में खेल खत्म करके इसे जाना कहाँ है? इसका वास्तविक ठिकाना अथवा बसेरा कहाँ है?

### परमधाम का वासी आया देश बेगाने

जैसे कि पृष्ठ 23 पर चित्र में दिखाया गया है, लोक कुल तीन हैं। इसलिए परमात्मा को त्रिलोकीनाथ अथवा त्रिभुवनेश्वर कहा गया है। इन तीनों

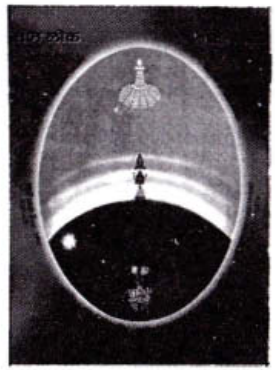

लोकों में से सबसे नीचे का लोक कर्म-क्षेत्र, मनुष्य-सृष्टि अथवा "स्थूल लोक" है, क्योंकि यहाँ सभी जीव-प्राणी स्थूल देह धारण करते हैं और मनुष्य इन सभी प्राणियों में से मुख्य है और यहाँ जैसा कोई कर्म करता है वैसा ही फल वह भोगता है। यह सृष्टि नाटक-शाला अथवा लीला-धाम भी कहलाती है क्योंकि यहाँ आत्मा-रूपी ऐक्टर शरीर रूपी वेश धारण करके अपना-अपना पार्ट बजाती है। यह सृष्टि आकाश तत्व के अंशमात्र में है और यहाँ सदा ही मनुष्य-आत्माओं का अनादि ड्रामा अविरत (Non-Stop) गति से चलता ही रहता है। इस लोक में वचन अथवा ध्वनि भी है, संकल्प भी है, सुख-दु:ख का भोग भी है और जन्म-मरण भी है। इसे 'मूवी-टॉकी' (Movie-Talkie;बोल-चाल वाली) दुनिया भी कहा जा सकता है।

.... इस लोक के सूर्य और तारागण के पार, आकाश तत्व से भी पार एक अन्य लोक है जिसे 'सूक्ष्म लोक' कहा जाता है, यह प्रकाश तत्व में है। यहाँ सबसे पहले ब्रह्मापुरी, विष्णुपुरी फिर शंकरपुरी है। यहाँ के देवताओं के शरीर प्रकाशमय और दिव्य हैं। यहाँ वचन तो हैं परन्तु ध्वनि नहीं है। यहाँ दु:ख या मृत्यु नहीं है। इसे 'मूवी वर्ल्ड' (Movie World) भी कहा जाता है। इसी लोक को 'देव-लोक' भी कहा जाता है।

इसके भी पार एक अन्य लोक है जहाँ 'ब्रह्म' नाम का एक सूक्ष्म, दिव्य

स्व-प्रकाश तत्व है। इसलिए इस लोक को, **'ब्रह्मलोक'** भी कहते हैं। यहाँ ही आत्माएं मुक्ति की अवस्था में रहती हैं। यहाँ से ही वे सृष्टि-मंच पर आकर शरीर में व्यक्त होती तथा कर्म करती हैं। इसी लोक को **'परलोक'**, परमधाम अथवा **'मुक्तिधाम'** भी कहा जाता है। इसी का एक नाम **'शिवपुरी'** भी है, क्योंकि परमपिता परमात्मा शिव का यहीं वास है। इसे ही **'मूल-लोक'** अथवा **'निराकारी-सृष्टि'** भी कहा जाता है, क्योंकि यहाँ आत्माएं निराकार अर्थात् अशरीरी अवस्था में रहती हैं। यहाँ न सुख है, न दु:ख, न संकल्प है, न वचन और न कर्म। यहाँ आत्मा निष्क्रिय होती है और मन अव्यक्त, तिरोभावित (Dormant), अथवा लीन (Merged) अवस्था में होता है।

सूक्ष्म लोक और ब्रह्मलोक को चर्म-चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। इन्हें दिव्य-चक्षु द्वारा ही देखा जा सकता है। जब मनुष्य देह भान से न्यारा, आत्मा के स्वरूप में स्थित, परमपिता परमात्मा की स्मृति में लवलीन होता है तो प्रभु-कृपा से उसे दिव्य-दृष्टि प्राप्त होने पर ही इस लोक का साक्षात्कार होता है।

इस लोक को दूसरे धर्मों के लोग 'आलमें अरवाह' (रूहों की दुनिया) या **'हाईएस्ट हैवन'** (Highest Heaven) भी कहते हैं। लगभग सभी धर्मों के लोग मानते हैं कि मुक्ति प्राप्त होने के बाद आत्मा ब्रह्मलोक को चली जाती है। उपनिषदों को मानने वाले भी कहते हैं कि छान्दोग्य उपनिषद में लिखा है* कि "इन्द्रियों को जीतने वाली, सभी के साथ पूर्ण अहिंसा से व्यवहार करने वाली मनुष्यात्मा 'ब्रह्मलोक को जाती है' परन्तु कई लोग इसका अर्थ **'ब्रह्मलोक में जाती है'** – ऐसा न करके यह अर्थ करते हैं कि वह 'ब्रह्म का दर्शन' करती है"। हालाँकि उपनिषदों को मानने वाले यह भी कहते हैं कि उपनिषद में 'ब्रह्मलोक' शब्द का स्पष्ट प्रयोग है, फिर भी कई लोग ब्रह्मलोक के अस्तित्व को नहीं मानते और न मानने का कारण केवल यही बताते हैं कि

* ब्रह्मलोकम् अभिपद्यते – उपनिषद् के ये शब्द हैं।

यदि 'ब्रह्मलोक' भी कोई लोक होता तो दिखाई देता।

वास्तव में ब्रह्मलोक को इसलिए न मानना कि वह दिखाई नहीं देता, भूल करना है, क्योंकि इस दलील का आधार लेकर तो कोई कहेगा कि आत्मा और परमात्मा का भी कोई अस्तित्व नहीं है, क्योंकि मनुष्य तो चर्म-चक्षु से आत्मा और परमात्मा को भी नहीं देख सकते, आत्मा और परमात्मा की बात तो अलग रही, मनुष्य के चर्म-चक्षु तो इस स्थूल, प्रकृतिकृत जगत् के भी बहुत से सत्पदार्थों को देखने में समर्थ नहीं हैं। परन्तु फिर भी उनके अस्तित्व को हम सभी मानते हैं, क्योंकि चर्म-चक्षुओं से दिखाई दे सकना ही किसी पदार्थ के अस्तित्व का एकमात्र प्रमाण नहीं है। इसी प्रकार हम आत्मा और परमात्मा इत्यादि के अस्तित्व को मानते हैं, यद्यपि उनका दर्शन हम चर्म-चक्षुओं से नहीं कर सकते। उनके अस्तित्व को मानने का एक कारण यह भी है कि उनका साक्षात्कार दिव्य-चक्षु से होता है और उनका अनुभव भी दिव्य-बुद्धि ही से होता है। ठीक इसी प्रकार बह्म लोक, परलोक, परमधाम, शिवलोक, निर्वाणधाम, आलमे अरवाह या हाईएस्ट हैवन के अस्तित्व को मानना ही होगा क्योंकि न केवल ईश्वरीय वाक्यों से ही यह सिद्ध होता है कि इस नाम का एक लोक है जहाँ आत्मा निर्वाण अथवा मुक्ति (Liberation) की अवस्था में रहती है बल्कि इसके अतिरिक्त परमपिता परमात्मा की कृपा से हममें से अनेकानेक बहनों तथा भाइयों को जो दिव्य-दृष्टि प्राप्त हुई है उसके आधार पर भी हम यह कह सकते हैं कि ब्रह्मलोक नाम का लोक है जहाँ पर आत्मा-रूपी मुसाफिर का जाना होता है। वही सभी आत्माओं का ठिकाना अथवा मंजिल है।

वैसी भी साधारण विवेक की बात है कि यह मनुष्य-लोक तो कर्म और सुख-दु:ख भोगने के लिए है। यहाँ तो आत्माएं शरीर रूपी वेष-भूषा धारण करके खेल अथवा क्रीड़ा करती हैं अथवा इस विराट सृष्टि-लीला में अपना-

अपना अभिनय करती हैं। इस सृष्टि को तो 'लीलाधाम' अथवा 'कर्मक्षेत्र' ही कहा गया है। अत: जब आत्मा देह से, कर्मों से तथा सुख-दु:ख से मुक्त है, तब भले इस मनुष्य लोक में उसके रहने का प्रयोजन ही क्या है? तो स्पष्ट है कि मुक्ति की अवस्था में आत्मा निर्वाणधाम (ब्रह्मालोक) में निवास करती है।

## ब्रह्मलोक में मनुष्यात्मा की अवस्था

यहाँ आत्मा देह-रहित अवस्था में होती है। वहाँ वह विकर्ममुक्त निस्संकल्प और निष्क्रिय होती है, क्योंकि उसे कोई कर्म तो करना ही नहीं होता। कई शास्त्रवादी कहते हैं कि मुक्ति में आत्मा का 'चैतन्य गुण' भी नहीं रहता। परन्तु वास्तव में आत्मा की चैतन्यता तो रहती है किन्तु उसकी चेतना की अभिव्यक्ति नहीं होती। अन्य कई कहते हैं कि आत्मा निर्गुण है और लेप तथा विक्षेप से न्यारी है परन्तु वास्तव में बात यह है कि जब आत्मा ब्रह्मलोक में है तब उसके गुणों की भी 'अभिव्यक्ति' नहीं होती। वास्तव में तो आत्मा के अपने गुण हैं और मन उससे पृथक् कोई प्रकृतिकृत सत्ता न होने के कारण लेप-विक्षेप भी आत्मा ही को होता है, परन्तु होता है तब जब आत्मा मनुष्यलोक में शरीर धारण करती है। मुक्ति में न कर्मेन्द्रियाँ हैं, न कर्म और न कर्म फल अर्थात् न सुख न दु:ख। इन सभी से न्यारी अवस्था है, जिसका कुछ अनुभव इस मनुष्य-लोक में भी योगाभ्यास करने से तथा पवित्रता सम्बन्धी नियमों का पालन करने से ही हो सकता है।

# क्या मन और बुद्धि आत्मा से अलग है?

हरेक मनुष्य सारा दिन कुछ-न-कुछ संकल्प-विकल्प, सोच-विचार, इच्छा-प्रतिज्ञा, स्मृति-कल्पना आदि तो करता ही रहता है। प्रश्न उठता है कि यह कार्य किसके हैं? आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध कैसा है और वह शरीर द्वारा कैसा कार्य लेता है। क्या आत्मा और शरीर से भिन्न 'मन' नाम की भी कोई तीसरी चीज़ है?

इस विषय में कई अद्वैत वेदान्ती कहते हैं कि सारे विश्व में आत्मा तो एक ही है। वही आत्मा सारे शरीर में भी व्यापक है। परन्तु प्रश्न उठता है कि सारे शरीर में व्यापक होते हुए भी आत्मा एक ही समय में केवल एक ही इन्द्रिय के विषय का अनुभव क्यों कर सकती है, अधिक का क्यों नहीं और वह एक समय में केवल एक ही विचार क्यों कर सकती है, अधिक क्यों नहीं? इसका उत्तर वे यह देते हैं कि आत्मा तो सारे शरीर में व्यापक ही है, परन्तु हरेक शरीर में आत्मा के साथ जो मन है, वह प्रकृतिकृत है और वह **अति सूक्ष्म अणु** के समान है। मन के अणु जितना महीन होने के कारण ही आत्मा उस द्वारा एक समय में एक ही विचार कर सकती है, अधिक नहीं। वे कहते हैं कि यह अणु-जितना मन ही कर्त्ता और भोक्ता है और लेप-विक्षेप भी इसी को होता है तथा संस्कार भी इसी में रहते हैं। आत्मा स्वयं तो सदा साक्षी और अकर्त्ता तथा अभोक्ता है। अब हमें निष्पक्ष भाव से सोचना है कि क्या उनका यह मन्तव्य ठीक है?

आप देखेंगे कि वास्तव में अद्वैत वेदान्तियों की यह मान्यता ठीक नहीं है। इसमें त्रुटि यह है कि पहले तो सारे विश्व में एक ही आत्मा मान ली गई और सारे शरीर में भी उसे व्यापक मान लिया गया है और बाद में इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि आत्मा सारे शरीर में व्यापक होते हुए भी एक

समय में केवल एक ही इन्द्रिय के विषय का अनुभव क्यों कर सकती है और एक समय में एक ही आत्मा होते हुए भी अनेक क्यों प्रतीत होती है? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए उन्होंने यह मानना ज़रूरी समझा कि विचार और अनुभव करने वाली चीज़ एक अणु-जैसी ही होनी चाहिए। अब आत्मा को तो वे सर्वव्यापक ही मानते रहे और ऊपर लिखित प्रश्न के उत्तर के लिए उन्होंने यह मान लिया कि आत्मा से अलग एक-एक मन है, वह प्रकृतिकृत और अणु-रूप है। अब देखा जाए तो यह सारा तरीका और सारी विचारधारा ही ग़लत है।

वास्तव में तो एक समय में एक ही विचार कर सकना तथा एक ही अनुभव कर सकना सिद्ध करता है कि आत्मा स्वयं ही अणु-रूप है और आत्मा सारे शरीर में व्यापक नहीं है।

यह बात सिद्ध की जा सकती है कि सारे विश्व में एक ही आत्मा नहीं है, बल्कि भिन्न-भिन्न संस्कारों वाली अनेक अणु-रूप, ज्योति स्वरूप आत्माएं हैं। दूसरी बात यह है कि मन-बुद्धि को ही कर्त्ता और भोक्ता मानना तथा आत्मा को अकर्त्ता और अभोक्ता समझना ही भूल है, क्योंकि करने और भोगने की योग्यता तो **चेतन आत्मा** ही के लक्षण हैं न कि किसी **प्रकृतिकृत सत्ता** के। विचार करना, कर्म के लिए इन्द्रियों को प्रेरणा देना, अनुभव करना और अनुभव की स्मृति रखना आदि-आदि सभी आत्मा ही की योग्यताएं हैं; ये किसी प्रकृतिकृत मन की योग्यताएं नहीं हो सकती।

यदि कर्म करने, सोचने, इच्छा करने, भोगने, अनुभव करने आदि की योग्यताएं किसी प्रकृतिकृत मन में हों तो जड़ प्रकृति और चेतन आत्मा में कोई भेद ही नहीं रहेगा।

इच्छा, स्मृति, संकल्प, सुख-दु:ख का अनुभव इत्यादि, यही तो चेतन आत्मा के लक्षण हैं। यदि इन लक्षणों को हम प्रकृतिकृत मन-बुद्धि के लक्षण

मान लेंगे तब तो मन-बुद्धि से भिन्न और अलग 'आत्मा' नाम की कोई चीज़ ही नहीं रहेगी। अत: एक समय में एक ही विचार और एक ही अनुभव होने से सिद्ध है कि विचार तथा अनुभव करने वाली स्वयं चेतन आत्मा ही अणु-रूप है; आत्मा विभु या सर्वव्यापक नहीं है और कोई अणु रूप मन-बुद्धि उससे अलग नहीं हैं।

संस्कार भी उसी आत्मा ही में रहते हैं। आप ज़रा सोचिये कि यदि संस्कार आत्मा में न रहते होते तो उन्हें 'अनादि' कैसे माना जा सकता? दूसरी बात यह है कि यदि संस्कार स्वयं आत्मा में न रहते तो आत्मा ने सबसे पहले जो शरीर धारण किया, चाहे कभी भी किया, वह किस आधार पर धारणा किया? यदि मन और संस्कारों को आत्मा से अलग माना जाय तो आत्मा का सबसे पहला जन्म स्त्री या पुरुष रूप में, मनुष्य या किसी अन्य तन में, किसी धनवान या निर्धन के घर में सतयुग में अथवा अन्य किसी युग में क्यों हुआ? इस प्रश्न का उत्तर लोग नहीं दे सकते जो कि मन-बुद्धि को आत्मा से अलग प्रकृतिकृत मानते हैं।

वास्तविकता तो यह है कि सोचना, विचारना, संकल्प करना, अनुभव करना आदि योग्यतायें अणु-समान अविनाशी आत्मा की ही हैं और संस्कार भी स्वयं आत्मा ही में होते हैं और आत्मा शरीर में भृकुटि में निवास करती है। वह मस्तिष्क और स्नायुओं द्वारा कर्मेन्द्रियों को प्रेरित कर कर्म करती तथा उनका फल भोगती है। आत्मा ही ज्ञाता है, इसीलिए यही कर्मों का प्रेरक भी है, जो ज्ञाता न हो वह कर्मों का प्रेरक नहीं हो सकता। अत: प्रकृतिकृत मन कर्मों का प्रेरक नहीं हो सकता।

आजकल के विज्ञापन तथा मनोविज्ञान से भी यही सिद्ध होता है कि मस्तिष्क ही ऐसा यन्त्र अथवा उपकरण है जिस द्वारा आत्मा सोचती, विचारती, याद रखती तथा अनुभव करती है।

ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन काल के लोगों को भले ही शरीर की बनावट का काफ़ी ज्ञान था, परन्तु उन्हें मस्तिष्क (Brain) की बनावट तथा योग्यताओं का पूरा परिचय न था और उन्होंने प्रकृतिकृत मन की जो योग्यताएं आदि बताई हैं और उसका जो प्रयोग माना है, वे वास्तव में मस्तिष्क पर ही ठीक लागू होते हैं। अत: मस्तिष्क के अतिरिक्त किसी प्रकृतिकृत अणु-रूप मन को मानने की आवश्यकता नहीं।

दूसरी ओर आजकल के बहुत-से मनोवैज्ञानिक ऐसे हैं, जो कि मस्तिष्क ही को मन तथा सब-कुछ मानते हैं, और आत्मा को मस्तिष्क (Brain) से अलग नहीं मानते। वे भी ग़लती करते हैं क्योंकि किसी चेतन आत्मा के सिवाय प्रकृतिकृत मस्तिष्क भी कुछ नहीं कर सकता। मस्तिष्क तो एक साधन अथवा उपकरण (Organ) है; उसका प्रयोग करने वाली तो आत्मा, उससे अलग है। अत: वास्तविकता तो यह है कि मस्तिष्क आत्मा के लिए आँखों, कानों इत्यादि इन्द्रियों की तरह बल्कि उनसे भी महत्वपूर्ण एक इन्द्रिय अथवा उपकरण है और मन-बुद्धि वास्तव में आत्मा ही की मनन शक्ति, स्मरण शक्ति, अनुभव शक्ति या योग्यता का नाम है और आत्मा मनन, स्मरण, और अनुभव मस्तिष्क द्वारा ही करती है। इनके अतिरिक्त अणु-रूप कोई मन नहीं है।

## क्या स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था से प्रकृतिकृत मन का अस्तित्व सिद्ध होता है?

जो लोग मन और बुद्धि को आत्मा से अलग प्रकृतिकृत मानते हैं, वे अपने विचार की पुष्टि में स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था के भेद का प्रमाण देते हैं। वे कहते हैं कि – "जब मनुष्य स्वप्न की अवस्था में होता है तो वह जागृत अवस्था में देखी गई या विचारी गई चीज़ों के सूक्ष्म रूप देखता है, परन्तु जब वह सुषुप्ति की अवस्था में होता है तो वह कुछ भी नहीं देखता।

कई बार तो ऐसे आदमी भी देखे गये हैं जिनकी आँखें निद्रा में अर्ध-खुली रह जाती है परन्तु फिर भी वे उस अवस्था में अपनी आँखों के सामने पड़ी हुई चीज़ें नहीं देख सकते और यदि कमरे में कोई अगरबत्ती अथवा धूप जल रही हो तो सोया हुआ मनुष्य उसकी सुगन्धि का भी अनुभव नहीं कर सकता। वे कहते हैं कि जागृत अवस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्ति अवस्था में आत्मा तो वही होती है, शरीर तथा कर्मेन्द्रियाँ भी वही होती हैं, परन्तु यह अवस्था-भेद इसलिए होता है कि इन दोनों के अतिरिक्त एक **सूक्ष्म शरीर** भी है। वह सूक्ष्म शरीर प्राणमय कोश, मनोमय कोश और विज्ञानमय कोश का बना हुआ है। जब आत्मा स्थूल शरीर और मन से अपना संसर्ग या सम्पर्क बिल्कुल हटा लेती है तो मनुष्य **सुषुप्ति** की अवस्था में होता है और फिर **जब वह स्थूल** शरीर से स्वयं को हटा लेती है परन्तु **सूक्ष्म** शरीर से **अथवा मन से** अपना सम्बन्ध बनाये रखती है तो वह **स्वप्नावस्था** का अनुभव करती है और जब वह स्थूल शरीर तथा मन दोनों से सम्बन्ध बनाये रखती है तो **जागृत** अवस्था में होती है। इस अवस्था भेद से स्पष्ट है कि मन-बुद्धि इत्यादि आत्मा से अलग हैं''। **अब हम इस प्रमाण तथा सिद्धान्त पर विचार करके देखेंगे कि क्या यह ठीक है?**

आप देखेंगे कि जो लोग मन-बुद्धि इत्यादि को आत्मा से अलग मानते हैं और ऊपर-लिखित प्रमाण देते हैं, उनसे यदि यह पूछा जाय कि **जिन प्राणमय कोश, मनोमय कोश तथा विज्ञानमय कोशों से सूक्ष्म शरीर बना है, वह कोश एक-दूसरे के अन्दर ऐसे ही हैं जैसे कि प्याज के छिलके एक दूसरे के अन्दर होते हैं या वे एक दूसरे में मिश्रित हैं या इनमें से कोई अधिक सूक्ष्म हैं या यह तीनों मिलकर एक सूक्ष्म शरीर कैसे बनाते हैं, तो वे इसका कोई उत्तर नहीं दे सकते।** दूसरी बात यह है कि एक ओर तो कई लोग कहते हैं कि मन अणु जितना सूक्ष्म है और दूसरी ओर यदि उन लोगों से पूछा जाय

कि मनोमय कोश आदि कोशों से बना हुआ सूक्ष्म शरीर कितना बड़ा है तो उसका भी वे लोग सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकते। **तीसरे, यदि उनसे पूछा जाए कि मन अथवा सूक्ष्म शरीर के कार्य की मस्तिष्क के कार्य से क्या भिन्नता है तो इसका भी वे कुछ सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकते। चौथी बात यह है कि यदि स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाएं सूक्ष्म शरीर के या मनोमय कोश आदि के कारण होती हैं तो प्रश्न उठता है कि डाक्टर लोग दवाइयों द्वारा ये अवस्थाएं कैसे ला सकते हैं?** क्या वे दवाइयों द्वारा सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करते हैं? डॉक्टर लोग तो एक्स-रे (X-ray) तथा अन्य साधनों से सिद्ध करके बता सकते हैं कि स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्छा आदि अवस्थायें **मस्तिष्क** ही के प्रभावित होने से होती हैं। अत: इन सभी बातों से सिद्ध होता है कि मन-बुद्धि आत्मा से अलग कोई प्रकृतिकृत सत्ताएं नहीं हैं।

तब प्रश्न उठता है कि फिर ये स्वप्न, सुषुप्ति आदि-आदि अवस्थाएं कैसी होती हैं? इसका विवेक-युक्त और सही उत्तर यही है कि जब आत्मा स्थूल शरीर और मस्तिष्क से अपना व्यतिरेक (Withdraw) कर लेती है अथवा अपने को हटा लेती है अर्थात् **निश्चेष्ट** (Thoughtless) हो जाती है तो वह सुषुप्ति अवस्था में आ जाती है और जब वह स्वयं को स्थूल शरीर से हटा तो लेती है परन्तु **निश्चेष्ट** नहीं होती और मस्तिष्क के साथ थोड़ा-बहुत सम्पर्क बनाये रखती है तब वह स्वप्न अवस्था में होती है और जब मस्तिष्क को कोई ठोकर लगती अथवा कोई ऐसी हानि पहुँचती है तो मूर्छा अवस्था आ जाती है; उस अवस्था में आत्मा मस्तिष्क से कोई कार्य नहीं ले सकती। डॉक्टर लोग भी किन्हीं दवाइयों द्वारा मस्तिष्क से सम्बन्धित स्नायुओं को प्रभावित करते हैं। अत: मन और बुद्धि को प्रकृतिकृत, सूक्ष्म शरीर मानना व्यर्थ है। **मन तो आत्मा ही की मनन, इच्छा, विचार, कल्पना आदि की योग्यता का या संकल्प ही का नाम है और बुद्धि आत्मा ही की निर्णय या विवेक शक्ति का नाम है।**

## क्या बुद्धि को अच्छा या खराब मानने से बुद्धि आत्मा से अलग सिद्ध होती है?

कई लोग कहते हैं कि हम बहुत बार कहते हैं – ''आज मेरी बुद्धि ने ठीक निर्णय नहीं किया अथवा अब मेरी बुद्धि अच्छी तरह काम नहीं करती''। इस प्रकार के वाक्यों से सिद्ध होता है कि 'मैं' अर्थात् आत्मा अलग हूँ और बुद्धि अलग है। परन्तु आप देखेंगे कि इन वाक्यों के आधार पर बुद्धि को आत्मा से अलग मानना ठीक नहीं है, क्योंकि जैसे हम कई बार यह कहते हैं – ''आज **मेरी** बुद्धि ने ठीक कार्य नहीं किया'' वैसे तो बहुत मनुष्य कई बार यह भी कहते हैं कि – ''आज **मेरी आत्मा को** दुःख हुआ''। तो क्या **'मेरी आत्मा'** कहने से यह सिद्ध होता है कि **'मैं'** और **'आत्मा'** – ये दो अलग-अलग चीज़ें हैं? नहीं, यह तो वाक्यों में ''मेरी आत्मा'' का मतलब है कि **'स्वयं** अर्थात् **मुझे'** दुःख हुआ। ठीक इसी प्रकार, ''मेरी बुद्धि ने ठीक निर्णय नहीं किया'' – इस वाक्य का अर्थ है कि मेरी विवेक-शक्ति ने या मेरी विचार-शक्ति ने अर्थात् मेरी निर्णय की योग्यता ने ठीक निर्णय नहीं किया। इससे भी बुद्धि का आत्मा से अलग होना सिद्ध नहीं होता।

अच्छा, बताइये कि – ''मेरी बुद्धि ने ठीक निर्णय नहीं किया'' – यह निर्णय देने वाला कौन है? आप कहेंगे – 'आत्मा'। तो स्पष्ट है कि 'निर्णय' हर हालत में आत्मा ही करती है और वह आत्मा ही निर्णय की योग्यता के बारे में कह रही है कि 'आज ठीक निर्णय नहीं हुआ है'।

यदि बुद्धि आत्मा से अलग कोई प्रकृतिकृत सत्ता होती तो हम परमात्मा से जब कहते हैं कि – ''हे प्रभो, हमें **दिव्य-बुद्धि** दीजिए'' तो क्या हम परमात्मा से कोई दिव्य प्रकृतिकृत वस्तु मांगते हैं? नहीं, बल्कि हम तो परमात्मा से वह सत्य ज्ञान माँगते हैं अथवा वह **विवेक-शक्ति** माँगते हैं जिस द्वारा हम सन्मार्ग पर चल सकें। और यह दिव्य ज्ञान आत्मा ही का विषय है,

यह किसी प्रकृतिकृत बुद्धि का विषय नहीं हो सकता। परमात्मा को जब हम **'ज्ञान का सागर'** कहते हैं तो क्या परमात्मा की कोई प्रकृतिकृत बुद्धि है जिसमें वह ईश्वरीय ज्ञान है? नहीं, नहीं। ज्ञान को स्वयं आत्मा ही धारण करती है। अत: बुद्धि भी आत्मा से अलग कोई प्रकृतिकृत सत्ता नहीं है।

इसी प्रकार, जब भक्त लोग परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि – ''हे प्रभो हमारे अवगुण **चित्त** न धरो'', तो क्या परमात्मा के किसी प्रकृतिकृत चित्त से उनका अभिप्राय होता है? कदापि नहीं। चित्त भी आत्मा से अलग कोई प्रकृतिकृत सत्ता नहीं है, बल्कि मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार – ये सभी आत्मा ही की संकल्प, कल्पना, इच्छा, धारणा, ध्यान, विचार, निर्णय, स्मृति, अनुभूति, निज-भान आदि-आदि की योग्यताओं के विभिन्न नाम हैं।

हरेक शरीर में जो बिन्दु-रूप अथवा अणु-समान अनादि और अविनाशी आत्मा है, ये मन-बुद्धि आदि सभी उसी आत्मा ही की चेतनता के सूचक है। इन्हें आत्मा से अलग किसी प्रकृतिकृत सत्ता में मानना गोया आत्मा को न मानना है। वास्तव में तो आत्मा ही में सभी जन्मों के संकल्प तथा संस्कार अदृश्य अथवा अव्यक्त रूप में समाये हुए हैं। यही तो एक आश्चर्यजनक सत्यता है जो कि अब परमपिता परमात्मा शिव ने हमें प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा समझायी है!

# क्या मनुष्यात्मा पुनर्जन्म लेती है?

आज संसार में इस विषय पर भी बहुत वाद-विवाद है कि आत्मा पुनर्जन्म लेती है या नहीं! कई मत-वादी कहते हैं कि आत्मा एक बार शरीर धारण करके, कर्म करती है और उसका फल भोगती है और जब उसका देहान्त होता है तो उसके बाद वह पुन: शरीर नहीं लेती। बल्कि, वह कब्र-दाखिल रहती है और जब अन्त में कयामत अथवा अन्तिम निर्णय का दिन (Day of judgement) आता है तब वह पुन: उठ खड़ी होती है और खुदा उन्हें उनके कर्मों का फल देता है और वापस 'आल्मे अरवाह' (Soul World) में अर्थात् परलोक में ले जाता है। परन्तु वास्तव में यह मान्यता ग़लत है। पुनर्जन्म की मान्यता की सत्यता में कई प्रमाण दिए जा सकते हैं।

### १. किसी का जन्म अमीर घराने में तथा किसी का ग़रीब घराने में क्यों?

हम देखते हैं कि कोई आत्मा किसी धनवान और सुशील माता-पिता के यहाँ जन्म लेती है और अन्य कोई निर्धन, कंगाल, अशिक्षित, असभ्य और चरित्र-भ्रष्ट घराने में जन्म लेती है, आख़िर इसका भी कोई तो कारण होगा? कारण के बिना तो कोई भी कार्य नहीं होता। स्पष्ट है कि आत्मा एक जीवन में जो कर्म करती है उसका वह कुछ फल तो उसी जीवन में भोगती है और जो फल भोगना रह जाता है, उसे वह अगले जन्म में भोगती है। उसी फल को भोगने के लिए ही वह अपने पूर्व संस्कारों के अनुसार दूसरा जन्म लेती है। जो लोग पुनर्जन्म को नहीं मानते, वे इस बात का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकते कि आख़िर एक आत्मा और दूसरी आत्मा का भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न कुटुम्ब या देश में तथा स्त्री-तन या पुरुष-तन में अथवा नीरोग तन या रोगी तन में जो जन्म होता है उसका कारण क्या है?

## २. शिशु अवस्था में हँसने-रोने आदि से पुनर्जन्म सिद्ध

इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि जन्म लेते ही शिशु कभी रोता है और फिर थोड़ी देर में हँसता है। उसके सामने कोई व्यक्ति या चीज़ न भी हो तो भी वह कभी मुस्कराता और कभी उदास हो जाता है। प्रश्न उठता है कि जबकि अभी शिशु ने अपने सम्बन्धियों का परिचय ही नहीं पाया और इस कुटुम्ब की हानि-लाभ आदि की परिस्थितियों का उसे कुछ पता ही नहीं है तो उसके हँसने-रोने की दशा का क्या कारण है? इस प्रश्न का इसके सिवा और कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता कि वह अपने पूर्व-जन्मों के संस्मरणों के कारण कभी प्रसन्न होता और कभी रोता है परन्तु अभी इन्द्रियों के कोमल होने के कारण अपने भावों को व्यक्त नहीं कर सकता।

## ३. पूर्व संस्कारों के कारण ही किसी विद्या अथवा विषय में विशेष योग्यता

हम यह भी देखते हैं कि कई व्यक्ति छोटी आयु में ही संस्कृत, गायन, नृत्यकला या अन्य किसी विषय में असाधारण प्रतिभा अथवा योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। कई बच्चे शीघ्र ही उस विद्या को सीख लेते, अनेक शास्त्र, ग्रन्थ आदि कण्ठस्थ कर लेते हैं अथवा वैराग्यादि के कारण घर छोड़ जाते हैं। इसकी व्याख्या सिवा इसके और क्या हो सकती है। उन्हें पूर्व-जन्म से ही उस-उस विद्या, कला या संस्कार का अभ्यास होता है और इस जन्म में भी उसके अनुकूल वातावरण मिलने पर वे उस विद्या में प्रवीण हो जाते हैं अथवा पूर्व संस्कार के अनुसार सहज तथा शीघ्र ही कुछ कर लेते हैं।

## ४. एक ही माता-पिता के दो बच्चों में भी भेद

यह सभी के अनुभव की बात है कि एक ही माता-पिता के दो बच्चों में भी बहुत बातों में असमानता होती है हालाँकि उनके माता-पिता वही हैं। उन्हें

खाने-पीने को भी एक-जैसा ही मिलता है परन्तु एक का स्वभाव, संस्कार और भाग्य दूसरे से नहीं मिलता। इसका कारण भी पूर्व-जन्म के संस्कार तथा कर्म-फल ही है। अत: इससे भी पुनर्जन्म की मान्यता की सिद्धि होती है।

### ५. माता के स्तनों से दुग्ध-पानादि से सिद्ध

एक नव-जात शिशु को माता के स्तनों के दूध पीने की कोई शिक्षा या ट्रेनिंग नहीं दी जाती, बल्कि यह सहज स्वभाव ही से उसे करने लगता है। इससे स्पष्ट है कि बच्चे को इस क्रिया का पूर्व-ज्ञान अथवा पूर्व-अभ्यास है। अत: इससे भी पूर्वजन्म का होना सिद्ध होता है।

### ६. यदि आत्मा पुनर्जन्म लेती है तो उसे पूर्व जन्म की बातें याद क्यों नहीं रहतीं?

कई लोग यह आपत्ति करते हैं कि यदि आत्मा एक शरीर छोड़ने के बाद दूसरा शरीर धारण करती है तो उसे पूर्वजन्म की बातें याद क्यों नहीं रहतीं?

अब इस विषय में देखने की बात यह है कि अल्पज्ञ आत्मा में जैसे स्मृति का गुण है, वैसे ही विस्मृति का गुण भी है। वह इसी एक जीवन में भी कई पिछली बातें भूल जाती है तो पिछले जन्म की तो बात ही क्या? कई बार तो मनुष्य दो-चार दिन पहले की बातें भी भूल जाता है। निद्रा के बाद, मूर्छा के बाद, दिमागी चोट के बाद या स्थान, सम्बन्ध और परिस्थितियाँ बदलने के बाद भी मनुष्य कई बातें भूल जाता है। इस प्रकार, मृत्यु भी एक ऐसी घटना है जिसके कारण मनुष्य पिछली बहुत-सी बातें भूल जाता है। फिर जो कुछ उसे याद भी रहती हैं, उन्हें वह अपनी शैशव अवस्था में बताने में असमर्थ होता है और उसके बड़े होने तथा बातचीत करने के योग्य होने तक वे भी बहुत-कुछ भूल जाती हैं और हम देखते हैं कि **कुछ बच्चों को पूर्व-जन्म की बातें याद रहती भी हैं। समाचार पत्रों में कई बार ऐसे समाचार प्रकाशित**

**हुए हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि कई बच्चों को पूर्वजन्म की बातें याद रहती हैं। इससे पूर्वजन्म सिद्ध होता है।**

वास्तव में देखा जाय तो पूर्वजन्मों की बात को भूल जाना तो कई कारणों से आवश्यक भी है। एक तो वर्तमान जन्म में अपने कर्मों के फल के रूप में सुख-दु:ख भोगने के लिए भी पूर्वजन्म के वृत्तान्तों और सम्बन्धों को भूलना ज़रूरी है। दूसरा, यदि हरेक मनुष्य को अपने पूर्व-जन्म की स्मृति हो तो संसार में गड़बड़ हो जायेगी। कोई मनुष्य बाज़ार में जाते हुए यह पहचानकर कि अमुक व्यक्ति ने पूर्व-जन्म में उसे मारा था, वहीं लड़ना-झगड़ना शुरू कर देगा। कोई बच्चा यह देखकर कि अमुक महिला पूर्वजन्म में उसकी माता थी, उसे पकड़कर उससे मोह-ममता की बातें करने लगेगा और शायद उसे अपने घर ले जाने के लिए ही हठ करने लगेगा। अत: अपने पूर्वजन्मों के सारे हालात याद न होने से यह नहीं मान लेना चाहिए कि पुनर्जन्म होता ही नहीं।

**बल्कि, किसी व्यक्ति में काम के, किसी में क्रोध के संस्कारों के होने से तथा किसी को एक से लाभ, किसी को उसी से हानि इत्यादि-इत्यादि के होने से स्पष्ट होता है कि हम पिछले भी कुछ संस्कारों तथा कर्मों का हिसाब लेकर आए हैं, वर्ना यह संसार ऐसा न होता जैसा हम देख रहे हैं।**

## ७. कर्मों का फल अगले जन्म में न मानने से संसार में चरित्रहीनता

हम देखते हैं कि कोई मनुष्य अच्छे कर्म करता है, कोई बुरे। हम यह भी देखते हैं कि हरेक मनुष्य को अपने सभी कर्मों का फल उसी जन्म में तो मिल नहीं पाता। अत: यदि पुनर्जन्म न होता हो और मनुष्य को अगले जन्म में अपने कर्मों का फल न भोगना पड़ता हो तब तो हरेक व्यक्ति अपने कर्मों के बारे में असावधान होकर छल, कपट, क्रोध और द्वेष आदि किसी भी तरीके से अपना वर्तमान प्रयोजन सिद्ध करने की कोशिश करेगा और दूसरे का ध्यान नहीं करेगा। इससे तो समाज और देश में अनैतिकता और अनाचार

ही बढ़ेगा। "पुनर्जन्म होता है और मनुष्य को अपने कर्मों का फल अब या अगले जन्म में भोगना पड़ता है" – इसी निश्चय से ही तो मनुष्य दान-पुण्य करता, दूसरे का भला करता और बुरे कर्मों से बचने की कोशिश करता है। अत: नैतिकता के दृष्टिकोण से भी पुनर्जन्म सिद्ध है।

### ८. मौत के डर और मुक्ति की इच्छा से पुनर्जन्म सिद्ध

मनुष्य को मौत से जो डर रहता है, इससे भी सिद्ध है कि पहले भी उसने मृत्यु का अनुभव किया है अर्थात् पहले भी उसने जन्म-मरण भोगा है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य को मुक्ति की जो इच्छा है उससे भी सिद्ध है कि उसमें यह सूक्ष्म स्मृति है कि पुनर्जन्म होता है और अब वह उस कटु अनुभव से छुटकारा पाना चाहता है। अत: मृत्यु से डर और मुक्ति की इच्छा से भी पुनर्जन्म का संकेत मिलता है।

### ९. कयामत तक कब्र-दाखिल होने का अर्थ

वास्तव में यह जो कहा गया है कि कयामत अथवा "अन्तिम निर्णय का दिन आने पर खुदा स्वयं हरेक आत्मा को उसके कर्मों का फल देते हैं", इसका भी एक गहन अर्थ है जिसे आजकल उन-उन धर्मों के लोग भी नहीं जानते। अब स्वयं परमपिता परमात्मा ने मनुष्य-आत्माओं के अनेक जन्मों की जो कहानी हमें सुनाई है, उसके आधार पर हम जानते हैं कि परमपिता परमात्मा के सिवा सभी आत्माएं पुनर्जन्म लेने वाली अथवा जन्म-मरण के चक्कर में आने वाली हैं। सभी आत्माएं लौकिक रीति से अर्थात् माता के गर्भ से जन्म लेती हैं, केवल परमपिता परमात्मा ही सारे कल्प में एक बार धर्म-ग्लानि के समय **दिव्य जन्म** लेते हैं अर्थात् **परकाया प्रवेश** करते हैं। मनुष्यात्माएं एक बार जन्म लेने के बाद अपने कर्मों के हिसाब-किताब के कारण जन्म-मरण में आती ही रहती हैं। कल्प के अन्त तक सभी आत्माएं

स्वरूप-विस्मृत और पतित हो जाती हैं – ''यही उनका **कब्र दाखिल होना है**''। ऐसी स्थिति हो जाने पर परमपिता परमात्मा शिव अवतरित होते हैं और मनुष्यात्माओं को ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग सिखाकर पुन: पावन करते हैं और जो पावन नहीं होते उन्हें वे उनके कर्मों का दण्ड देते हैं और सभी को परमधाम ले जाते हैं। आप स्वयं सोचिए कि **मनुष्यात्माएं पुनर्जन्म न लेती तो जन-संख्या दिनोंदिन बढ़ती न जाती।** जनसंख्या बढ़ने का कारण ही यह है कि जिन आत्माओं ने पहले जन्म लिया, वे तो पुनर्जन्म लेती ही आती हैं और उनके अतिरिक्त मुक्तिधाम से अन्यान्य आत्माएं भी आ-आकर जन्म ले रही हैं। यदि मनुष्यात्माएं पुनर्जन्म न लेती होती तो जन-संख्या में वृद्धि न हो सकती।

सतयुग से लेकर कलियुग के अन्त तक के सृष्टि-चक्र के आदि, मध्य और अन्त का जो इतिहास अब परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा के कमल-मुख द्वारा समझाया है, उसे समझने से स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्यात्माओं में अपने जन्म-जन्मान्तर के पार्ट बजाने के संस्कार अनादि काल से तिरोभावित (merged) हैं और आत्माएं जन्म-पुनर्जन्म लेती ही रहती हैं जब तक कि सृष्टि का महाविनाश न हो और परमपिता परमात्मा शिव मुक्ति न दें।

# क्या मनुष्यात्मा पशु-योनि में जन्म लेती है?

आत्मा के अस्तित्व को मानने वाले लोगों में से कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि मनुष्य-योनि की आत्मा शरीर छोड़ने के बाद पशु या पक्षी आदि योनियों में भी जा सकती है। अपने इस मत को सिद्ध करने के लिए वे अनेक युक्तियाँ और दृष्टान्त भी देते हैं परन्तु यदि उन पर विचार किया जाय तो वे विवेक-संगत नहीं हैं।

### १. मनुष्यात्मा पशु-योनि में बन्दी नहीं बनती बल्कि मनुष्य-योनि में ही बन्धनों में है।

उदाहरण के तौर पर जो लोग मनुष्यात्माओं का पुनर्जन्म पशु-योनि में मानते हैं वे कहते हैं कि – "हम संसार में देखते हैं कि यदि कोई व्यक्ति चोरी करता, डाका डालता, खून करता या अन्य कोई बुरा कर्म करता है तो सरकार उसकी स्वतन्त्रता छीन लेती है। वह उसे जेल में बन्द कर देती है और उस आदमी को हथकड़ियाँ या बेड़ियाँ डाल देती है। वह उसे एक छोटी कोठरी में भी बन्द कर देती है जहाँ उसे सुख-सुविधायें भी प्राप्त नहीं होती और वह अपनी इच्छा से कहीं घूम-फिर भी नहीं सकता। इसके विपरीत, यदि कोई व्यक्ति सरकार के बनाये नियमों को नहीं तोड़ता और कोई उच्च कार्य करता है तो सरकार उस कार्य की उच्चता और उसके व्यवहार तथा चरित्र के अनुसार उसे कोई क्वार्टर, बंगला या कोठी आदि देती है और उसके लिये मोटर कार आदि सुविधाएं तथा अधिक धन के रूप में सुख आदि भी देती है"। वे कहते हैं कि – "ठीक इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति बुरे कर्म करता है तो परमपिता परमात्मा, जो कि संसार की सर्वोच्च सरकार है, उसे किसी ऐसी योनि में डाल देते हैं जहाँ पर उसे सुख-सुविधा न हो और वह परतन्त्रता

का अनुभव करे ओर उसकी बुद्धि कम हो। योनियों में भी एक इन्द्रिय वाली, दो इन्द्रियों वाली, तीन इन्द्रियों वाली इत्यादि योनियाँ हैं। कर्मों के दण्ड के अनुसार मनुष्य को योनि मिलती है। जो चोरी करता या डाका डालता है, वह चौपाये जानवरों की योनि में या अन्य ऐसी योनि में जाता है जिसमें हाथ न हों, जो आँख द्वारा बुरा कर्म करता है वह ऐसी यानि में जाता है जिसमें आँख न हों। उदाहरण के तौर पर बैल को बोलने की इन्द्रिय प्राप्त नहीं है और गधे को अल्प-बुद्धि प्राप्त है।''

अब यों तो ऊपर दी गई दलील ठीक मालूम होती है, परन्तु विचार करने पर आप इसी निर्णय पर पहुँचेंगे कि वास्तव में यह ठीक नहीं है क्योंकि जैसे बैल को वाच्येन्द्रिय (organ of speech) प्राप्त नहीं होती वैसे ही कई मनुष्य भी गूंगे, हकलाने वाले (stammering) या तन्दु वाले (tongue-tied) होते हैं। जैसे गधे को अल्प बुद्धि प्राप्त है, वैसे ही अल्प बुद्धि वाले तो बहुत मनुष्य हैं। बल्कि कई मनुष्य तो पागल (mad) अर्ध-पागल (half-mad) मन्द बुद्धि (dull), जड़मति (block-headed) पत्थर-बुद्धि (dunce) सिर-फिरे (cracks), मतवाले (drunkedn) या असावधान चित वाले (absent minded) हैं। इसी प्रकार नेत्रहीन (blind), अंगहीन (maimed) पंगु, लंगड़े (crippled) हैं, नपुंसक (eunuch), अपाहिज (disable-bodied) इत्यादि, अर्थात् कर्म इन्द्रियों वाले या विकृत अथवा टूटी-फूटी इन्द्रियों वाले मनुष्य भी होते हैं। फिर हम यह भी देखते हैं कि बहुत इन्द्रियाँ होने पर आज मनुष्य प्राय: बहुत ही इन्द्रियलोलुप (sensualist), विषयासक्त (voluptuous) 'विकारी और विक-र्मोन्मुख' है। मनुष्य तो आज इतना विकारी हो गया है कि काम विकार को तो वह अपना एक अधिकार (conjugal right) मानता है, क्रोध उसके कंठ पर सदा सवार है और काम उसकी दृष्टि-वृत्ति में सदा बैठा ही है। अत: बहुत इन्द्रियों के आधार पर भी मनुष्य आत्मा का पशु-योनि में गमनागमन नहीं माना जा सकता क्योंकि इन्द्रियों द्वारा कुकर्म करने वाले मनुष्य को अगले जन्म में

ही नाँगता की स्थिति में भी हम मनुष्य देह में देखते हैं अर्थात् किन्हीं इन्द्रियों से वन्चित मनुष्य-शरीर में हम पाते हैं। हम देखते हैं कि मनुष्य-योनि में भी ऐसे बहुत-से लोग हैं जिनके हाथ नहीं हैं, (कट गये हैं), जिनकी आंख नहीं हैं (अंधी हो गई हैं), कान नहीं है (बहरे हो गये हैं), या जो गूंगे हैं या जिन्हें अर्द्धांग है या जिनके सारे शरीर पर कोढ़ है। अत: जबकि मनुष्य-योनि में हम मनुष्यों को कई इन्द्रियों से वन्चित देखते हैं तो यह मान्यता कि मनुष्यात्मा अपने हाथों, पाँवों, आँखों आदि द्वारा पाप करने के फलस्वरूप ऐसी योनि में पुनर्जन्म लेती है जिसमें कि उसे वह इन्द्रिय प्राप्त न हो जिस द्वारा उसने पाप किया, निरर्थक ही है। इसके अतिरिक्त, जहाँ तक बन्दी या कैदी बनने का सवाल है, बहुत-से मनुष्य ऐसे भी हैं जो जेल से बाहर होते हुए भी अधिक असुविधा में हैं। न उनके पास रहने के लिए कोई कोठरी है, न खाने के लिए अनाज। तो मनुष्य भी अपने **कर्मों** को जंजीरों में इसी योनि में ही बुरी तरह **बन्धा हुआ** है और उसकी इच्छा और सुविधा के विपरीत बहुत कुछ होता है। उसकी अवस्था कोई जीवन्मुक्ति की अवस्था नहीं है, बल्कि **जीवनबद्ध** अवस्था है और मनुष्य को पेटभर रोटी के लिए पशुओं की तरह दासता में रहना पड़ता है। दिनभर कोल्हू के बैल की तरह अपने काम पर जुटना पड़ता है। एक गधे की तरह सामान अपनी पीठ पर लादना पड़ता है। अत: जेल और कैदियों के दृष्टान्त को सामने रखकर मनुष्यात्मा का पशु-योनि में पुनर्जन्म मानना ग़लत है।

### २. मनुष्यात्मा अपनी दूषित प्रवृत्तियों से छुटकारा पाने के लिए पशु योनियों में नहीं जाती; उसे ज्ञान-योग का आधार लेना पड़ता है

आत्मा के योनि-परिवर्त्तन में विश्वास रखने वाले लोग कहते हैं कि – "सरकार किसी अपराधी को जेल में केवल परतन्त्र रखने के लिए भेजती है बल्कि मनुष्य को जेल की कोठरी में इसलिए भी बन्द रखा जाता है कि वहाँ

उसे चोरी करने, डाका डालने, हिंसा या लड़ाई-झगड़ा करने आदि का अवसर नहीं मिलेगा और इस प्रकार होते-होते उसकी निकृष्ट प्रवृत्तियाँ लुप्त हो जायेंगी और उसकी प्रवृत्ति अच्छी हो जायेगी''। वे कहते हैं कि – ''इसी प्रकार पाप करने वाली मनुष्यात्माओं को भी पशु आदि योनियों में इसलिए डाला जाता है कि उनकी पाप-वृत्तियाँ मिट जायें और उनमें शुभ प्रवृत्तियों का आवागमन या अविर्भाव हो।''

परन्तु विचार करने पर आप दखेंगे कि यह कथन भी विवेक-संगत नहीं है। **सभी जानते हैं कि जेल में रहने के बाद शायद ही कोई आदमी सुधरता होगा। और, दूसरी बात यह है कि पशु आदि योनियों में तो कोई ऐसी योनि ही नहीं कि जिनमें पाप बिल्कुल न होता है।**

पशुओं में तो हिंसा, द्वेष, क्रोध, काम और लोभ, आदि सभी विकार और निकृष्ट प्रवृत्तियाँ होती हैं। अत: यह कहना ग़लत है कि पशु-योनियों में जाने के परिणामस्वरूप मनुष्यात्माओं को अपनी दूषित प्रवृत्तियों का प्रयोग करने का अवसर न मिलेगा, क्योंकि पशुओं में तो दूषित प्रवृत्तियाँ होती हैं, जैसे कि शेर में **हिंसा** होती है, बगले में **ढोंग** होता है, बिल्ली-कुत्ते में परस्पर **द्वेष** भी होता है।

एक मिनट के लिए मान भी लिया जाय कि पापी मनुष्यात्मा जब पशु-योनियों में जाती है तो उसकी दूषित प्रवृत्तियाँ उससे छूट जाती हैं तो पशु-योनि भोगने के बाद पुन: जब वह आत्मा मनुष्य-योनि में आती है, उसमें कोई दोष, कोई निकृष्ट प्रवृत्ति या कोई विचार नहीं होना चाहिए। परन्तु हम देखते हैं कि मनुष्य योनि में बाल्यकाल में भी क्रोध, लोभ, मोह तथा निकृष्ट प्रवृत्तियाँ होती हैं और मनुष्यों में शेर से भी अधिक हिंसक मनुष्य हैं और बगले से भी अधिक मक्कार लोग हैं और सभी मनुष्यों में थोड़ी-बहुत दूषित प्रवृत्तियाँ तो हैं ही।

**हमें ऐसे भी मनुष्य मिलते हैं जिनमें वास्तविक अर्थ में मनुष्यों के कई लक्षण ही नहीं मिलते और जिनकी प्रवृत्तियाँ किसी दृष्टिकोण से पशुओं से भी गिरी हुई हैं। तब भला यह मानना ग़लत ही तो है कि निकृष्ट प्रवृत्तियों से छुटकारा दिलाने के लिये ईश्वर की ओर से यह व्यवस्था है कि मनुष्यात्मा पशु-योनि में पुनर्जन्म ले। यदि ऐसा होता तब तो मनुष्य-जीवन में ज्ञान, योग आदि सभी साधन निरर्थक सिद्ध होंगे क्योंकि वास्तव में मनुष्य की वृत्ति और प्रवृत्ति को सुधारने के लिए ईश्वरीय ज्ञान और योग ही की व्यवस्था है न कि पशु-जन्म में पुनर्जन्म लेकर सुधारने की। पशु-योनि में आने से तो आत्माओं द्वारा पाशविकता ही का अभ्यास होगा और उस योनि में निकृष्ट कर्म तथा विकार भी तो हैं ही।**

### ३. दु:ख भोगने के लिए भी मनुष्यात्मा पशु-योनि में ही नहीं जाती बल्कि मनुष्य-योनि में ही भोगती है

योनि-परिवर्तन के सिद्धान्त को मानने वाले लोग कहते हैं कि "अपने बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप मनुष्यात्मा को दु:ख के रूप में दण्ड मिलता है"। इस कथन पर सोचने के बाद भी आप इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि यह युक्ति भी ठीक नहीं है क्योंकि हम देखते हैं कि दु:ख तो मनुष्य-योनि में भी है और कि मनुष्य-योनि में ही मनुष्य को पाप कर्मों का फल मिलता है। उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति यदि किसी को छुरा मारता है तो सरकार उसे जेल में दण्ड देती है। कोई मनुष्य क्रोध करता है तो उसका प्रभाव इसी जीवन में भी उसके मस्तिष्क, हृदय और रक्त पर और शरीर के विकास पर पड़ता है। कोई व्यक्ति बेईमानी से पैसा कमाता है तो उसके घर में रोग, शोक और रिश्वत आदि पर वह पैसा भी खर्च होता है, वह स्वयं अशान्त भी रहता है और एक दिन पकड़ा भी जाता है, या जब लोगों को ज्ञात हो जाता है कि वह व्यक्ति बेईमान है तब उसका मान, धन्धा आदि मन्द पड़ जाता है। अत: जबकि

मनुष्य-योनि में ही बुरे कर्मों का फल मिलते हुए हम देखते हैं तो यह क्यों माना जाय कि बुरे कर्मों का फल भोगने के लिए मनुष्यात्मा पशु आदि योनियों में जाती है?

इसके अतिरिक्त, आज हम देखते हैं कि मनुष्यों को तो इतनी प्रकार की अशान्ति और इतने प्रकार के दु:ख हैं कि पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि योनियों में तो वे हो भी नहीं सकते। उदाहरण के तौर पर सरकार के बढ़ते हुए टैक्सों, चीज़ों की बढ़ती हुई मंहगाई आदि की चिन्ता मनुष्य ही को होती है। रस्म-रिवाज़ तथा लोक-लोज आदि के कारण भी मनुष्य ही दु:खी होता है। मनुष्य ही को घर, कपड़े-लत्ते, भोजन, बर्तन, खाने के लिए व्यंजन, शादी के लिए खर्च, शिक्षा के लिए धन, मान के लिए पद आदि की आवश्यकता है और ये न होने पर उसे दु:ख तथा अशान्ति होती है।

**पशुओं के न कोई ऐसे खर्चीले रीति-रिवाज़ हैं, न उन्हें मान-अपमान, वेष-भूषा या मकान-दुकान या बच्चों के वर-विवाह की कोई चिन्ता है। न उन्हें बिजली की आवश्यकता है, न चारपाई या चादर की। न उन्हें टोपी-जूता चाहिए, न मोटर-गाड़ी। पशुओं में न कोई मुकदमा-बाज़ी होती है न इलैक्शन का चक्कर है, न उन्हें परीक्षा की चिन्ता है और न पुलिस द्वारा चालान से डर। अत: मनुष्य ही अनेक प्रकार की व्यथाओं, वेदनाओं, चिन्ताओं, चेष्टाओं, आवश्यकताओं, कामनाओं, विकल्पों, विचारों, वासनाओं और निराशाओं के कारण अशान्त रहता है। तो जबकि मनुष्य-योनि में पाप-कर्मों का फल मिलते हुए हम देख रहे हैं और यह भी देख रहे हैं कि मनुष्य-योनि पशु आदि योनियों से भी अधिक मात्रा में और अनेकानेक प्रकार की अशान्ति है, तब भला क्यों माना जाय कि मनुष्यात्मा अपने आप पाप-कर्मों की दु:ख रूप प्रालब्ध भोगने के लिए पशु आदि योनियों में जाती है?**

यदि मनुष्य को बुरे कर्मों का फल पशु-पक्षी आदि योनियों में ही मिलने की व्यवस्था होती तब तो मनुष्य-योनि में कभी भी कोई दु:खी दिखाई न देता परन्तु हम देखते हैं कि बहुत-से मनुष्य पशुओं से भी अधिक दु:खी होते हैं। कई कुत्ते कारों में घूमते हैं, वे डबल रोटी खाते हैं और गरम गदेलों पर लेटते हैं परन्तु करोड़ों मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें पेट-भर रूखा-सूखा खाना भी नहीं मिलता और सर्दी-गरमी से अपने शरीर को सुरक्षित रखने के लिए वस्त्र या मकान भी नहीं।

हम यह स्पष्ट देखते हैं कि पशु-योनि में केवल दु:ख ही नहीं है बल्कि सुख भी है। उदाहरण के तौर पर दौड़ के घोड़े (Race Horse) को देखिए। वह हज़ारों-लाखों रुपयों का होता है, उसकी मालिश और सेवा-सफ़ाई के लिए विशेष मनुष्यों को वेतन पर रखा जाता है, उसके स्वास्थ्य और कुशलता के लिए डाक्टरों पर धन खर्च किया जाता है, उसे दौड़ाने का अभ्यास कराने के लिए भी विशेषज्ञों की सहायता ली जाती है; अत: यही क्यों माना जाय कि पशु-योनियाँ दण्ड भोगने के लिए अथवा दु:ख की प्रारब्ध भोगने के लिए हैं? क्या हम यह नहीं देखते कि बहुत-से पशु-पक्षी **स्वतन्त्र** हैं और **अल्प काम** हैं। पक्षी आकाश में स्वतन्त्र विचरते हैं और बगीचों या जंगलों में जाकर मन-पसन्द फल खा लेते हैं, परन्त मनुष्य रोटी-कपड़ा कमाने के लिए इतना कठिन परिश्रम करने पर भी चिन्तित रहता है। पशु-पक्षी मनुष्य से प्राय: अधिक स्वस्थ रहते हैं और बहुत से पशुओं में काम, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि भी इतना नहीं होता जितना कि आज मनुष्य में है। अत: यह मानना ग़लत है कि अधिक वासनाओं, विकारों या दु:ख की प्रारब्ध के कारण मनुष्यात्मा पश्वादि योनियों में जाती है।

इसके अतिरिक्त, मनुष्य चूँकि पशु से अधिक विचारशील अथवा बुद्धिमान है, इसलिए उसे दु:ख का भान पशु से अधिक होता है।

गधे को यदि डण्डे लगा दिए जाएं तो इतना कष्ट नहीं होता जितना कि एक सभ्य और मान्य-व्यक्ति भरी सभा में अपने प्रति अपमान-सूचक दो शब्द सुनकर दु:खी हो उठता है। अत: यह मानना कि अपने विकर्मों का फल दु:ख के रूप में भोगने के लिए मनुष्यात्मा को निकृष्ट योनियों में जन्म लेना पड़ता है, बिल्कुल ग़लत है।

### ४. पशु-योनि मनुष्यात्मा की भोग-योनि नहीं है

कई लोग योनि-परिवर्तन के लिए एक अन्य प्रकार से तर्क करते हैं। वे कहते हैं कि "कैदी और स्वतन्त्र मनुष्य की जाति तो एक ही होती है और अन्तर केवल इतना होता है कि कैदी कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं होता, बल्कि उसे कर्म भोगने ही पड़ते हैं"। – वे कहते हैं कि – "मनुष्य-योनि और पशु-योनि की आत्माओं की भी जाति तो एक है, परन्तु पशु-योनि भोग्य है, क्योंकि पशुओं में बुद्धि बहुत कम होती है और जो है उसका विकास नहीं हो सकता। वे सोच-विचार कर नहीं सकते इसलिए पशु-योनि कर्म-योनि नहीं है, बल्कि केवल भोग-योनि ही है, क्योंकि वे केवल भोगते ही हैं। परन्तु पशु-योनि कर्म-योनि भी है और भोग्य-योनि भी। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, वह सोच-विचार कर सकता है, **क्योंकि उसे बुद्धि प्राप्त है**। इसलिए उनके अच्छे और बुरे कर्मों का उत्तरदायित्व या ज़िम्मेदारी उसी पर है। यदि वह बुरे कर्म करता है तो उसे पशु आदि योनियों से अपने बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

अब विवेक का प्रयोग करने पर आप इसी निर्णय पर पहुँचेंगे कि यह दलील भी ठीक नहीं है। पशुओं में कम बुद्धि देखकर उन्हें मनुष्य-आत्माओं के लिए भोग-योनि मानना ग़लत ही तो है, क्योंकि यों तो हम देखते हैं कि मनुष्य के एक नव-जात शिशु में अथवा एक किशोर में भी मस्तिष्क का विकास नहीं हुआ होता और इसलिए कहना पड़ेगा कि उसे भी कर्म का उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। इसके अतिरिक्त, आज भी अफ्रीका के

जंगलों में तथा अन्य महाद्वीपों के भी कई देशों में लाखों-करोड़ों लोग ऐसे भी हैं जिनकी बुद्धि पशुओं ही के बराबर है, फिर पागल मनुष्यों का तो कहना ही क्या? उन्हें तो न्यायालय भी अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराते। तो जब कि मनुष्य-योनि में पशुओं-जैसी बुद्धि वाले तथा गलित, शिथिल एवं कम इन्द्रियों वाले लोग हैं तब फिर पशु-योनि को मनुष्यात्माओ के लिए भोग-योनि मानने का क्या कारण रहा?

पुनश्च, अधिक बारीकी से विचार करने पर आप मानेंगे कि यह कहना ग़लत है कि – पशु-योनि कर्म-योनि नहीं है, क्योंकि हम देखते हैं कि पशु भी बुद्धि का प्रयोग करते हैं और कर्म भी करते हैं तथा उनको सिखाने से वे काफी लाभकारी सिद्ध होते हैं। यदि वे कर्म न करते होते तो एक ही जाति के पशुओं में से कोई अधिक सुखी और कोई कम सुखी तथा कोई अधिक दु:खी, कोई कम दु:खी क्यों होता? तो स्पष्ट है कि पशु आदि योनियों में जो आत्माएं हैं वे भी कर्म करती हैं और उन्हीं योनियों में उसका फल भी भोगती हैं। परन्तु मनुष्य-आत्माओं का पशु-योनि में गमन नहीं होता।

हाँ, पशु-योनि **मनुष्यात्माओं के लिए भोग्य-योनि** इस दृष्टिकोण से है कि जो मनुष्यात्माएं अच्छे कर्म करती हैं, उन्हें पशुओं से भी सुख मिलता है और जो बुरे कर्म करती हैं, उन्हें पशुओं या कीट-पतंग आदि द्वारा भी दु:ख मिलता है।

### ५. संस्कारों के आधार पर भी योनि-परिवर्तन मानना ग़लत है

अब यह बात तो सभी मानते हैं कि बुरे भावों और कर्मों के परिणामस्वरूप मनुष्य के संस्कार भी बुरे बनते हैं। यह भी सभी लोग मानते हैं कि जब मनुष्यात्मा शरीर छोड़ती है तो वह अपने संस्कार साथ ले जाती है। परन्तु योनि-परिवर्तन को मानने वाले लोग कहते हैं कि – "अपने बुरे संस्कारों के कारण मनुष्यात्मा पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि योनियों में जन्म लेती है।

शरीरान्त के समय उसकी **जैसी वृत्ति होती है उसके अनुसार ही वह योनि लेती है।** यदि किसी में काम-वासना प्रधान है तो वह किसी ऐसी योनि में जाती है जिसमें काम-वासना का भोग अधिक हो''। परन्तु क्या उनका यह मत ठीक है? क्या हम यह नहीं देखते कि मनुष्य-योनि में तो काम आदि वासनाएं भोगने के लिए मनुष्य को अधिक अवसर एवं सुविधाएं हैं?

**निस्सन्देह मनुष्य-योनि में भी वासनाओं के भोग के अवसर और सुविधाएं अधिक हैं और वह अनेक तरीकों से इन्हें भोगता है। तो हम यह क्यों न मानें कि अपने बुरे संस्कारों के परिणामस्वरूप मनुष्यात्मा अपना अगला जन्म मनुष्य-योनि में ही ऐसे कुटुम्ब में लेती है जिनमें भी वह संस्कार और वासनाएं हैं अथवा जहाँ उसी तरह का वातावरण है?** यदि मनुष्य-योनि में यह संस्कार न होते तब तो यह मान लिया जाता कि अपने बुरे संस्कारों के कारण मनुष्यात्मा पशु-योनि में पुनर्जन्म लेती है, परन्तु हम देखते हैं कि एक तो मनुष्य-जाति में भी इन वासनाओं का खूब ज़ोर है और दूसरी बात यह है कि मनुष्य के बुरे संस्कारों के साथ उसमें ''**मनुष्य-पन**'' का बीज तो रहता ही है और उसका एक मौलिक संस्कार यह भी है कि वह **मनुष्य-योनि** में ही विषय-विकार भोगना चाहता है। मनुष्य में काम वृत्ति, लोभ वृत्ति आदि **मनुष्य इत्यादि ही से सम्बन्धित है न कि पशुओं से** और **उसके कर्मों का बन्धन** अथवा **हिसाब-किताब भी** मनुष्यों ही से है जिसे चुकाने के लिए अथवा जिसे भोगने के लिए उसे विशेष नर-नारी के पास, न कि किन्हीं पशुओं के पास पुनर्जन्म लेना पड़ता है।

## क्या देहान्त के बाद बुरे संस्कार के कारण मनुष्यात्मा दूसरी योनियों में नहीं जाती?

पशु-आदि योनियों में मनुष्यात्मा का पुनर्जन्म मानने वाले लोग कहते हैं कि योनियों की कुल संख्या 84 लाख न सही और मनुष्य योनियों की संख्या

भी 4 लाख न सही परन्तु मनुष्यात्मा देहान्त के बाद अपने संस्कारों और वासनाओं आदि के आधार पर मनुष्य-योनि छोड़कर दूसरी योनि में जाती अवश्य है। वे कहते हैं कि जैसे किसी खेत में चने का बीज बोये जाने पर वह बीज खेत और वायुमण्डल से अपने ही स्वभाव के अनुसार परमाणु लेकर चने के पौधों के रूप में प्रकट होता है और उसी खेत में गन्ने का बीज बोये जाने पर वह अपने ही मीठे परमाणु इकट्ठे करके गन्ने के रूप में बढ़ता है, वैसे ही इस संसार रूपी क्षेत्र में भी हरेक आत्मा अपने-अपने कार्यों, संस्कारों तथा वासनाओं के अनुरूप ही देह और योनि लेती है।

उपर्युक्त मान्यता और उदाहरण पर विचार करने पर आप मानेंगे कि इससे तो बल्कि यह सिद्ध होता है कि मनुष्यात्मा देहान्त के बाद किसी दूसरी योनि में पुनर्जन्म नहीं लेती, अपितु वह तो उसी मनुष्य योनि में ही पुनर्जन्म लेती है। जबकि चने का बीच चने के रूप में और गन्ने का बीज गन्ने ही के रूप में प्रकट होता है तो क्यों न माना जाय कि मनुष्यात्मा रूपी बीज पुन: मनुष्य ही के रूप में व्यक्त होता है, वह भी मनुष्य-योनि के अनुसार ही प्रकृति के परमाणु लेकर के मानव देह निर्मित करता है? जबकि चना बदलकर गन्ना नहीं बन जाता तब यह क्यों माना जाय कि मनुष्यात्मा कबूतर या काले साँप आदि का रूप धारण कर लेती है?

जहाँ तक संस्कारों और वासनाओं की बात है, ये भी मनुष्यात्मा के साथ ही मनुष्य-योनि में ही जाते हैं क्योंकि जैसे देहान्त से पहले वे मनुष्यात्मा में मनुष्य-योनि में व्याप्त थे वैसे ही देह त्याग के बाद भी उस आत्मा के साथ मनुष्य-योनि में ही जाते हैं। देह त्याग के बाद उन संस्कारों के पुन: मनुष्य-योनि में जाकर व्यक्त होने की बात को असम्भव मानने का तो कोई कारण ही नहीं है। हम संसार में विभिन्न संस्कारों, विचारों तथा वासनाओं वाले मनुष्य तो देखते ही हैं; तो यह क्यों न माना जाय कि वे आत्माएं अपने-अपने पहले के मानवी जन्मों ही के संस्कारों को भी साथ लाई हैं? हम यह क्यों मानें कि

मनुष्यात्मा के बुरे संस्कार उसे पशु-योनि में ले गये हैं, क्या मनुष्य योनि में वैसे बुरे संस्कार नहीं होते हैं? यदि होते हैं तो मानना पड़ेगा कि चाहे मनुष्यात्मा के संस्कार बुरे क्यों न हों, फिर भी वह जन्म मनुष्य-योनि में ही लेती है। हाँ, वह बुरे कर्मों का फल अवश्य ही दु:ख के रूप में भोगती है।

अत: वास्तविकता तो यह है कि मनुष्यात्मा के संस्कारों के परिणामस्वरूप उसको पशु-जैसी **शक्ल** वाली देह नहीं मिलती बल्कि पशु जैसे **अक्ल** मिलती है, उसको पशु-जैसा **तन** नहीं मिलता, पशु-जैसा उसका **मन** हो जाता है, उसे पशु-जैसी प्रकृति नहीं मिलती बल्कि उसकी **प्रवृत्ति, वृत्ति** अथवा **कृत्ति** पशु-जैसी हो जाती है। उसके कर्मों और संस्कारों के परिणामस्वरूप **उसका भाग्य परिवर्तन, प्रारब्ध-परिवर्तन और स्वभाव-परिवर्तन हो जाता है परन्तु योनि-परिवर्तन नहीं होता।** वह मनुष्य की देह छोड़कर बन्दर की देह नहीं लेता, परन्तु मनुष्य-देह में बन्दर से भी बदतर (तुच्छ) होता है।

इसके अतिरिक्त, हम देखते हैं कि मनुष्य-योनि में एक नव-जात शिशु अपनी माता से दूध **चूसता** है जबकि मुर्गे का नव-जात बच्चा दाना चुगता है। एक में शुरू से ही **चूसने** तथा दूसरे में **चुगने** के जो संस्कार हैं, उनसे ही सिद्ध है कि दोनों की बीजरूप आत्माएं ही भिन्न हैं। मुर्गी के बच्चे को जन्म-जन्मान्तर से चुगने ही का **अभ्यास** है और मनुष्य के बच्चे को चूसने का। इससे स्पष्ट है कि योनि-परिवर्तन का सिद्धान्त ग़लत है। मनुष्य अपने अच्छे और बुरे कर्मों का फल मनुष्य-योनि में ही भोगता है, वर्ना 84 लाख अर्थात् सूअर, बिल्ली, कुत्ता आदि योनियाँ मनुष्य के लिए भोग-योनियाँ नहीं हैं।

सोचने की बात है कि यदि मनुष्यात्माएं अपनी बुरी प्रवृत्तियों के सुधारने के लिए पशु-पक्षी आदि योनियों में जाती हैं तो वहाँ से लौटने पर फिर जब वे मनुष्य-योनि में जन्म लेती हैं तो **एक ही माता-पिता के दो बच्चों के संस्कारों में अन्तर क्यों होता है?**

## यदि मनुष्यात्मायें पशु-पक्षी आदि योनियों में जातीं तो अति बुद्धि वाले मनुष्य नहीं होते

हम संसार में अनेक ऐसे मनुष्य भी देखते हैं जो कि किसी विशेष विषय में चमत्कार दिखाते हैं। उस विषय में उन्हें विशेष प्रतिभा (Brilliance), आधिपत्य (Hold), अधिकार (Authority), या प्रभुत्व (mastery) प्राप्त होता है। कोई बाल्यावस्था से ही शास्त्रों को सहज ही कण्ठ करने में माहिर होता है तो कोई गणित विद्या में असाधारण (Extra-ordinary) योग्यता दिखाता है। कोई छोटी आयु में ही विज्ञान के आविष्कार करने लग जाता है तो कोई बड़ा होकर एक वीर और कुशल सेनानी या सफ़ल प्रबन्धक सिद्ध होता है। कोई कविता करने में चमत्कार दिखाता है तो कोई वैराग्य या भक्ति-भावना से भरपूर दिखता है। तो प्रश्न उठता है कि अमुक-अमुक विषय में जो चमत्कारी व्यक्ति या अति-बुद्धि वाले मनुष्य (Genius) होते हैं, क्या वे पशु-पक्षी या कीट-पतंग आदि योनियाँ भोग कर आये होते हैं? गम्भीरता से सोचने पर इसका उत्तर नकारात्मक (Negative) ही मिलेगा। स्पष्ट है कि पहले भी मनुष्य-योनि में इस विषय का सफल अभ्यास होने के कारण ये आत्माएं सतत् संस्कार साथ ले आई होती हैं। फिर हम यह भी देखते हैं कि ये अति-बुद्धि वाले व्यक्ति भी संसार के रोग-शोक या ज़रा-मृत्यु या अन्य किसी प्रकार के दु:ख और अशान्ति से भी प्रभावित होते हैं, वे दु:ख और अशान्ति से पूर्णत: मुक्त नहीं होते हैं। अतएव स्पष्ट है कि वर्तमान चमत्कारी जीवन से पहले मनुष्य-योनि में उन्होंने जो बुरे कर्म किये होते हैं, उनके फलस्वरूप तो अब वे शारीरिक दुर्बलता या रोग या निर्धनता आदि के रूप में दु:ख पाते हैं और जो उनका सफल पूर्वाभ्यास होता है, उसके विकास के फलस्वरूप अब वे कोई चमत्कारी या प्रतिभाशाली कार्य करते हैं। तो आप ही बताइये कि मनुष्यात्मा के पशु-योनि में जाने की मान्यता को भला क्यों सत्य माना जाय?

यहाँ कोई कह सकता है कि – ''कुछ मनुष्यात्माएं तो देहान्त के बाद मनुष्य-योनि में ही जन्म लेकर सुख-दु:ख भोगती हैं परन्तु अधिकांश संख्या में वे बुरे कर्मों के कारण पशु-पक्षी, कृमि-जलचर आदि योनियों में जाती हैं''। परन्तु वास्तव में उनका यह कथन थोथा और तथ्यहीन है, क्योंकि यदि कुछ मनुष्यात्माएं बुरी वासनाओं तथा कलुषित संस्कारों के होते हुए भी मनुष्य-योनि में जन्म ले सकती हैं, तो सभी पर यह नियम क्यों लागू नहीं होता? अनेक बार आपने समाचार पत्रों में पढ़ा होगा कि अमुक बच्चे ने अपने पूर्व जन्म के माता-पिता या पत्नी आदि का नाम तथा अपने गाँव का नाम बताया और जब वहाँ उसे ले जाया गया तो उसने सभी को पहचाना, अपने पूर्व जन्म के हालात बताये और अपनी मृत्यु का भी कारण बताया। ऐसे वृतान्त आये दिन समाचार पत्रों में छपते ही रहते हैं। परन्तु ऐसा तो आज तक कभी भी किसी बालक ने यह नहीं बताया और न प्रमाणित ही किया है कि वह पूर्व-जन्म में किसी पशु-पक्षी, कृमि या जलचर योनि में था। अत: इससे मनुष्यात्मा का मनुष्य-योनि में पुन: जन्म होना तो प्रमाणित होता है, परन्तु मनुष्यात्मा का पशु आदि योनियों में पुनर्जन्म होना किसी भी रीति सिद्ध नहीं होता।

एक बार यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि दिल्ली की एक लड़की ने कहा है कि हमारे पूर्वजन्म का पति मथुरा में है। उसका नाम-पता उस लड़की ने दिया था। वह आदमी ठीक मथुरा में पाया गया और उस लड़की ने उसे पहचान लिया और ऐसी बात भी कही कि जिसे उस पति के अतिरिक्त अन्य कोई जानता ही न था।

इस प्रकार, फ़रीदपुर जिला में मदारीपुर गाँव में, एक तीन वर्ष की आयु वाली बालिका एक दिन रोने लगी और उसने हठ किया कि – ''जिला चटग्राम में हमारा घर है, वहीं हमको ले चलो''। उसने अपने घर का पूरा पता दिया। उसने यह भी कहा कि मेरे तीन लड़के और चार लड़कियाँ हैं। उसकी सभी बातें ठीक निकलीं।

अभी कुछ समय पूर्व नई देहली से प्रकाशित होने वाले एक मुख्य समाचार पत्र, दैनिक ''इन्डियन ऐक्सप्रैस'' में एक समाचार में बताया गया था कि टर्की (Turkey) में एक बालक एक स्त्री के पास ले जाया गया जो कि पूर्व-जन्म में उसकी पत्नि थी। जब उस स्त्री ने उसे (भूतपूर्व पति को) नहीं पहचाना तो उस बालक ने इस स्त्री को यह बात कही कि – ''तुम मुझे नहीं पहचानती, मैं ने ही तो पूर्व जन्म में, जबकि तुम मेरी पत्नी थी, क्रोध में आकर तुम्हें छुरा घोंपा था''। तब वह स्त्री समझ गई कि उसके पूर्व पति की आत्मा ने अब यह दूसरा मानवी शरीर लिया है। समाचार पत्र में यह आवेदन था कि डा. बनर्जी के पास ऐसे 500 व्यक्तियों की जानकारी है जिनसे कि मनुष्य-योनि में पुनर्जन्म के होने की बात सिद्ध होती है। उनमें से कई ऐसे हैं जो वे अपने पूर्वजन्म के हालात बताते हैं और कई-एक का तो अभी का व्यवहार ऐसा है जिससे लगता है कि देहान्त के बाद आत्मा ने इस शरीर में प्रवेश किया है।

अब ऊपर टर्की के व्यक्ति का जो जन्म-पुनर्जन्म-सम्बन्धी वृत्तान्त दिया गया है उस पर आप किंचित विचार कीजिए। **जबकि छूरा घोंपने वाला वह व्यक्ति दूसरा जन्म भी मनुष्य-योनि में ले सकता है तो यह क्यों न माना जाय कि मनुष्य का पुनर्जन्म सदा मनुष्य-योनि ही में होता है, चाहे उस जन्म में उसे दु:ख मिले चाहे सुख – यह दूसरी बात है।**

मनुष्यात्मा भले ही परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म है तथापि उसमें जो **मौलिक** अथवा **अन्तर्निहित अनादि योग्यतायें** या अनादि स्वभाव आदि हैं, वह अन्य योनियों की आत्माओं से भिन्न हैं इसलिए वह कभी भी पशु-देह या पक्षी-देह नहीं लेती या कृम्यादि योनियों में नहीं जाती। इस विषय में समझने योग्य एक आवश्यक बात यह है कि जो लोग योनि-परिवर्तन के सिद्धान्त को मानते हैं, वे मन-बुद्धि को आत्मा से अलग, आत्मा की सूक्ष्म इन्द्रियों अथवा प्राकृतिक अन्त:करण के रूप में मानते हैं, परन्तु वास्तव में 'मन' आत्मा से अलग

कोई प्राकृतिक सत्ता नहीं है, न ही संस्कार या वासनाएं आत्मा से अलग किसी प्रकृति तत्व निर्मित मन में रहती हैं, बल्कि मन-बुद्धि स्वयं आत्मा ही की संकल्प-विकल्प, मनन-चिन्तन, सूझ-बूझ, स्मृति-विस्मृति, धारणा-ध्यान आदि योग्यताओं के नाम हैं। इन्हीं की संग्रहित शक्ति ही तो आत्मा की **'चेतना'** नाम से मानी जाती है। इस रहस्य को समझने से सारा भेद समझ में आ सकता है कि मनुष्यात्माएं पशु-पक्ष्यादि योनियों में क्यों नहीं जाती या क्यों नहीं जा सकतीं।

## क्या देहान्त के बाद मनुष्यात्मा 84 लाख योनियों में जाती हैं?

विशेषकर भारत में जो धर्म अथवा मत स्थापित तथा प्रचलित हुए, उनकी एक मुख्य मान्यता यह भी रही है कि देहान्त के बाद मनुष्यात्मा अपने कर्म-फल के अनुसार 84 लाख योनियों में जाती है और उन योनियों में प्रारब्ध भोग के बाद वह पुन: मनुष्य-योनि में लौट आती हैं। अब हम इस मन्तव्य पर विचार करके देखेंगे कि यह मन्तव्य ठीक है या त्रुटिपूर्ण है।

## क्या 84 लाख योनियों की गणना ठीक है या कल्पित है?

जो लोग मनुष्यात्मा का दूसरी-दूसरी योनियों में पुनर्जन्म होना मानते हैं, वे कहते हैं कि मनुष्यात्मा के दण्ड-भोग के लिए 84 लाख योनियों की व्यवस्था है। उनकी मान्यता है कि इन 84 लाख योनियों में 9 लाख जलचर, 10 लाख पक्षी, 11 लाख कृमि, 20 लाख पशु, 30 लाख स्थावर और 4 लाख मनुष्य-योनियाँ हैं।

अब इस गिनती पर ध्यान देने से आप देखेंगे कि जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य या कृमि किसी भी योनि के बारे में यह नहीं कहा गया कि वह इतने लाख इतने हजार, इतने सौ इतने हैं, बल्कि सभी योनियों की संख्या पूरे लाखों में दी है। उदाहरण के तौर पर पक्षियों की योनियों को संख्या पूरे 9 लाख बताई गई है। 9 लाख के साथ कई हज़ार या सौ आदि का अंक नहीं जुड़ा है। यही बात दूसरी

योनियों की संख्या के बारे में भी कही जा सकती है। उनकी संख्या से भी लाख की संख्या के साथ इकाई, दहाई, सैंकड़ा वा हज़ार का कोई अंक नहीं है। इससे स्पष्ट है कि यह गिनती अन्दाज़े, अनुमान या कल्पना से ही बताई गई है। वैसे भी यह साधारण विवेक की बात है कि कोई भी मनुष्य कृमि (कीड़े-मकोड़ों आदि) की या जलचर (जल में रहने वाले जीवों) आदि की संख्या ठीक रीति से गिनकर तो कोई भी यह कह नहीं सकता कि कृमि में या जलचर आदि में कुल इतने प्रकार की योनियाँ हैं, यह गणना तो केवल अनुमान ही के आधार पर मनुष्य कह सकता है। दूसरे, आप इस बात पर भी ध्यान दीजिए कि मनुष्य की जो चार लाख योनियाँ कही गई हैं, उसका क्या अर्थ है? **मनुष्य-योनि तो एक ही है।** यदि कोई कहे कि स्त्री, पुरुष, नपुँसक आदि को अलग-अलग गिनाया गया है, तो भी मनुष्य योनियाँ चार लाख तो होती नहीं हैं। अगर यह कहा जाय कि देव, अप्सरा, पितर, भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस, दानव, गंधर्व, किन्नर, यक्ष आदि भी योनियाँ हैं और ये मनुष्य-योनियों में ही सिम्मिलित हैं तो भी किसी प्रकार यह संख्या चार लाख तक नहीं पहुँच पाती। अगर कोई कहे कि गोरी, काली, नीली और लाल रंग वाली मनुष्य जातियाँ और ठिगने या लम्बे कद वाली मनुष्य जातियाँ भी अलग-अलग योनियाँ ही हैं, तो यह कहना ग़लत होगा क्योंकि यह तो मनुष्य–योनि ही के अन्तर्गत **विविध आकृतियाँ हैं।** ये कोई अलग-अलग योनियाँ नहीं हैं, न ही इस प्रकार मनुष्य-योनियों की संख्या चार लाख होती है। इस प्रकार असुर, साकार देवता आदि भी अलग योनियाँ नहीं हैं। तो आप देखेंगे कि आज तक किसी ने यह स्पष्ट नहीं किया कि चार लाख मनुष्य-योनियाँ कौन-सी हैं। जैसे आज सरकार के जन-गणना विभाग (Census Department) के कर्मचारी करोड़ों देशवासियों की नामावली या सूची तैयार करते हैं तो चार लाख मनुष्य-योनियों की सूची भी तैयार हो सकती है। परन्तु जब चार लाख योनियाँ हैं ही नहीं तो उनकी सूची कौन बनाए और कैसे बनाए? अत: स्पष्ट है कि चार लाख मनुष्य-योनियों की कल्पना और इसी प्रकार, 84 लाख योनियों में जन्म-पुनर्जन्म की कल्पना भी निराधार ही

है।

## मनुष्यात्मा के पशु-कृमि आदि योनियों में जाने पर क्या आपत्ति है?

कोई व्यक्ति प्रश्न कर सकता है कि – "आत्मा तो बाल की नोक के सौवें भाग के पुनः सौवें भाग से भी अधिक सूक्ष्म है, अतः वह चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त किसी भी योनि में जा सकती है; तो फिर पशु, पक्षी या कृमि-योनि में उसके आवागमन होने पर आपत्ति क्या है? यह प्रश्न तो वैसा ही है जैसे कि कोई कहे कि पीपल का बीज और बरगद का बीज माप-तोल और आकृति में तो लगभग एक-जैसे ही होते हैं, उनमें बहुत अन्तर नहीं होता, तब फिर पीपल के बीज से बरगद या बरगद के बीज से पीपल का वृक्ष पैदा क्यों नहीं हो जाता? स्पष्ट है कि दोनों बीजों की जाति (Species) ही अलग-अलग है क्योंकि दोनों में अन्तर्निहित (dormant) योग्यताएं ही भिन्न-भिन्न हैं। ठीक इसी प्रकार, मनुष्यात्मा भले ही परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म है तथापि उसके जो स्वभाव आदि हैं, वह अन्य योनियों की आत्माओं से बिल्कुल भिन्न हैं, इसलिए वह कभी भी पशु-देह नहीं लेती या कृम्यादि योनियों में नहीं जाती। इस विषय में समझने-योग्य एक आवश्यक बात यह है कि जो लोग योनि-परिवर्तन के सिद्धान्त को मनाते हैं, वे मन-बुद्धि को आत्मा से अलग, आत्मा की सूक्ष्म इन्द्रियों अथवा प्रकृतिक अन्तःकरण के रूप में मानते हैं। परन्तु वास्तव में 'मन' आत्मा से अलग कोई प्राकृतिक सत्ता नहीं है, न ही संस्कार या वासनाएं आत्मा से अलग किसी प्रकृति तत्व-निर्मित मन में रहते हैं, बल्कि मन-बुद्धि, स्वयं आत्मा ही की संकल्प-विकल्प, मनन-चिन्तन, सूझ-बूझ, स्मृति-विस्मृति, धारणा-ध्यान आदि योग्यताओं के नाम हैं। इन्हीं की संग्रहित शक्ति ही तो आत्मा की 'चेतना' नाम से मानी जाती है। इस रहस्य को समझने से सारा भेद समझ में आ सकता है कि मनुष्यात्माएं पशु-पक्ष्यादि योनियों में क्यों नहीं जातीं या क्यों नहीं जा सकतीं?

# मनुष्यात्मा के 84 जन्मों का चक्कर

मनुष्यात्माएं 5000 वर्षों के सृष्टि-चक्र में कुल 84 जन्म लेती हैं। इन 84 जन्मों का और 5000 वर्ष के चक्र का ज्ञान न होने के कारण ही ``84 के चक्कर'' की उक्ति को लेकर शायद 84 लाख योनि की कल्पना की गई है। इन 5000 वर्षों में सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग नाम के चार युग हैं। हरेक युग की आयु 1250 वर्ष होने से सतयुग में उसके कुल 8 जन्म होते हैं। त्रेतायुग में औसत आयु 125 वर्ष होने से कुल 12 जन्म होते हैं अर्थात् सतयुग और त्रेतायुग, दोनों को मिलाकर कुल 2500 वर्षों में भारतवासी मनुष्यात्माओं के कुल 21 जन्म होते हैं, द्वापरयुग में औसत आयु कम हो जाने से उनके कुल 21 जन्म होते हैं और कलियुग में आयु क्षीण हो जाने से कुल 42 जन्म होते हैं। इस प्रकार 5000 वर्ष के सारे कल्प में भारत-वासियों के कुल 84 जन्म होते हैं। पुराणवादी लोग कहते हैं कि भारतवर्ष का वर्णन करते हुए विष्णु पुराण में लिखा है कि इस द्वीप में मनुष्य 5000 वर्ष तक जीते हैं और कि श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है कि भारतवर्ष के निवासियों की एक-एक कल्प की आयु होती है। इन दोनों बातों को मिलाने से स्पष्ट होता है कि चारों युगों अथवा कल्प की आयु 5000 वर्ष है क्योंकि भारत में ही चारों युग होते हैं और इसका 5000 वर्ष का पुराना इतिहास भी है। अन्य देशों और धर्मों का इतिहास 2500 वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। पुनश्च, भारत में 84 घण्टे वाले मन्दिरों की जो प्रथा चली आ रही है और ``**84 का चक्कर**'' — यह जो उक्ति है, इससे भी स्पष्ट है कि इन 5000 वर्षों के समय (कल्प) में भारतवासी मनुष्य 84 जन्म-पुनर्जन्म के चक्कर में आते हैं।

### आधा समय सुख और आधा समय दुःख

परमपिता शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा हमें जो सहज ज्ञान दिया है, उसके आधार पर हम जानते हैं कि इस सृष्टि में आधा समय सुख और आधा

समय दु:ख होता है। यहाँ सतयुग और त्रेतायुग में सम्पूर्ण सुख-शान्ति और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है और द्वापर तथा कलियुग में दु:ख-मिश्रित सुख अथवा दु:खात्मक सुख अथवा दु:ख ही होता है। यह बात तो लगभग सभी धर्मावलम्बियों ने मानी है कि सतयुग में लोग सुखी, निरोगी और शान्ति-सम्पन्न होते हैं। अत: सतयुग और त्रेतायुग की सृष्टि को 'स्वर्ग' (Paradise) भी कहा गया है। इन दो युगों में मनुष्य की जो अवस्था होती है, वही सद्गति की अवस्था होती है, वह अवस्था कुल 21 जन्म के लिए प्राप्त होती है; अत: भारत में यह उक्ति भी है कि – "मनुष्य की 21 जन्म के लिए सद्गति हो सकती है"। पुराणवादी लोग कहते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता में प्रह्लाद की कथा का जिस रीति से वर्णन किया गया है उसका वैसा अर्थ लेना तो विवेक-संगत नहीं है, बल्कि वास्तविक कथा अथवा भावार्थ कुछ और ही है जो कि अलग ही समझने के योग्य है, परन्तु यहाँ हम इस बात की ओर संकेत कर देना चाहते हैं कि सद्गति की प्राप्ति अधिकाधिक 21 जन्मों ही के लिए गाई हुई है। हमने ऊपर सतयुग और त्रेतायुग के 2500 वर्षों में 21 जन्म और सारे कल्प में 84 जन्म गिनाए हैं। मनुष्य-योनि के इन्हीं 84 जन्मों में, न कि 84 लाख योनियों में मनुष्यात्मा भ्रमण करती है।

# आत्मा के तीनों कालों की कहानी

अपने-आपको पूरी तरह जानने के लिए यह भी जानना ज़रूरी है कि यह सृष्टि एक विराट नाटक है। सबसे पहला युग 'सतयुग' है, जिसमें परमधाम से केवल वही आत्माएं इस सृष्टि-मंच पर पार्ट बजाने आती हैं जो कि सतोप्रधान स्वभाव वाली और 16 कला पवित्र होती हैं। उस युग में काम-क्रोधादि विकार तथा दु:ख और अशान्ति नाम मात्र भी नहीं होते। उस युग के लोग 'देवी-देवता' कहलाते हैं और उस समय की सृष्टि ही 'स्वर्ग' है। 1250 वर्ष के सतयुग के बाद त्रेतायुग में सतोसामान्य स्वभाव वाली आत्माएं ब्रह्मलोक से इस सृष्टि पर आती हैं और सतयुग में आई हुई आत्माएं भी 2 कलायें कम अवस्था को प्राप्त होकर जन्म-पुनर्जन्म लेती रहती हैं।

1250 वर्ष त्रेतायुग के बाद द्वापर युग आता है, तब रजोगुणी स्वभाव की आत्मायें आती हैं और सतयुग तथा त्रेतायुग में आई हुई आत्मायें भी अब रजोगुणी स्वभाव वाली हो जाती हैं। अब आत्मायें काम-क्रोधादि विकारों से आक्रांत होती हैं और, इसलिए वे दु:ख तथा अशान्ति भी भोगती हैं और अब सुख तथा शान्ति की प्राप्ति के लिए भक्ति, पूजा, यज्ञ, तप आदि शुरू होते हैं। इस प्रकार 1250 वर्ष के बाद कलियुग आता है।

कलियुग में सभी आत्माएं तमोगुणी स्वभाव वाली होती हैं। पूर्व युगों में आई हुई आत्मायें भी अपनी सतोगुणी पवित्रता और धर्म की कलायें खो बैठती हैं और उनका जन्म-पुनर्जन्म होते रहने से मनुष्य-संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और सृष्टि में दु:ख तथा अशान्ति भी बढ़ती जाती है।

कलियुग के अन्त में, जब धर्म की अत्यन्त ग्लानि होती है और सभी आत्मायें तमोप्रधान, दु:खी तथा अशान्त होती हैं, तब सभी आत्माओं से श्रेष्ठ, जन्म-मरण और सुख-दु:ख से न्यारे, ज्ञान, शान्ति और आनन्द के सागर परमपिता परमात्मा शिव (जिनका ही पार्थिव स्मरण-चिह्न शिवलिंग अथवा संगे असवद है), परमधाम से इस सृष्टि में आते हैं। सतयुग के शुरु

में जो मनुष्यात्मा 16 कला सम्पूर्ण पवित्र एवं सर्वश्रेष्ठ थी और 'श्री नारायण' के नाम से सदेह होकर सारे विश्व पर राज्य करती थी और जो सत-त्रेता-द्वापर-कलि में पुनर्जन्म लेते-लेते अब अपने 84वें जन्म की वृद्धावस्था में होती है, उसके साधारण मानवी तन में परमपिता परमात्मा शिव दिव्य प्रवेश करते हैं। उसको अब वह 'प्रजापिता ब्रह्मा' नाम देते हैं। उसके श्री-मुख द्वारा वह वास्तविक गीता-ज्ञान और सहज राजयोग की शिक्षा देते हैं। उस ज्ञान योग द्वारा वह पुन: आत्माओं को पतित से पावन बनाते, मनुष्य को देवता बनाते, नर को श्री नारायण और नारी को श्री लक्ष्मी बनाते अथवा सभी को मुक्ति तथा जीवनमुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। जब वह यह कार्य कर चुके होते हैं तो ऐटम और हाईड्रोज़न बमों के महायुद्ध द्वारा तथा गृह-युद्धों द्वारा कलियुगी पतित सृष्टि का महाविनाश हो जाता है। तब सभी आत्माएं परमधाम अथवा ब्रह्मलोक को लौट जाती हैं। जो आत्माएं उस काल पूर्णत: पवित्र नहीं बनी होतीं, वे सूक्ष्म लोक में, धर्मराजपुरी में अपने रहे हुए विकर्मों के परिणामस्वरूप दण्ड भोगती हैं। तब इस सृष्टि में पुन: सतयुग का आरम्भ होता है और जो आत्माएं 16 कला पवित्र नहीं बनी होतीं, वे सूक्ष्म लोक में, धर्मराजपुरी में अपने रहे हुए विकर्मों के परिणामस्वरूप दण्ड भोगती हैं। तब इस सृष्टि में पुन: सतयुग का आरम्भ होता है और जो आत्माएं 16 कला पवित्र बन कर गई होती हैं, वे कुछ काल मुक्ति अवस्था में रहने के बाद, सतयुगी सृष्टि रूपी स्वर्ग में आकर जीवनमुक्त देव-पद प्राप्त करती हैं और इस प्रकार फिर सुख भोगती हैं।

अब संगमयुग चल रहा है। अब जो आत्माएं ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग द्वारा जितना पवित्र बन रही हैं, उस अनुसार ही उन्हें अपने तीनों कालों को जान लेना चाहिए।

अधिक स्पष्टीकरण के लिए पाठकगण प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय के किसी भी सेवा-केन्द्र पर सम्मुख पधार कर लाभ उठा सकते हैं।

# संसार के सभी दु:खों की निवृत्ति का एक उपाय

अब परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा यह समझाया है कि संसार में जितने भी प्रकार के दु:ख हैं, उन सभी के कारण हैं – छ: विकार जिन्हें 'षट-रिपु' या 'छ: दोष' भी कहा जाता है। आज हर-एक मनुष्य में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और सुस्ती में से एक-न-एक विकार थोड़ा-बहुत अवश्य है।

इन छ: विकारों का भी मूल क्या है? ईश्वरीय ज्ञान अथवा विवेक रूपी अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने पर आप इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि इन छ: विकारों का भी जो मूल कारण अथवा कीटाणु है – 'देह-अभिमान'। इस देह-अभिमान (Body-consciousness) के कारण ही मनुष्य को अनेकानेक दु:ख हैं।

स्वयं को एक देह मानने के कारण मनुष्य इस संसार में अन्य देहधारियों के साथ अनेक प्रकार के दैहिक नाते तो जोड़ने लग जाता है और आत्मा का जो नाता सुखदाता परमात्मा के साथ है, उसे वह भूल जाता है। वह देह-धारियों से जब मोह का सम्बन्ध जोड़ लेता है और फिर उन सम्बन्धियों को हानि, पराजय तथा शोक होने पर स्वयं भी दु:ख मानता है। वह जिन देह-धारियों को स्वजन के रूप में अपनाता है उनसे सहयोग या मान न मिलने पर उन पर क्रोध करके अशान्त हो जाता है, या तो जीवन की दौड़ में उन्हें अपने से अधिक सफ़लता तथा यश प्राप्त करता देखकर उनसे ईर्ष्या करने लगता है और इस प्रकार, अपने मन की शान्ति को खो बैठता है। वह देह के आधार पर पुरुष या स्त्री के भान में आकर काम विकार के वशीभूत होता है और अपने ओज और तेज को खोकर शरीर को दुर्बल कर बैठता है, बुढ़ापे तथा मृत्यु की ओर बढ़ना शुरु करता है और अनेक प्रकार के शारीरिक रोगों का शिकार होने लगता है। फिर 'काम' विकार के परिणाम-स्वरूप वह जो सन्तति पैदा करता है उसके दु:ख में भी दु:खी रहने लगता है और वह

उनमें ममता करके सारा दिन उन्हीं के लिए कमाने तथा घर बनाने में लगता रहता है और अपने ही किये को सुधारने की बजाय वह यही शिकायत करता फिरता है कि 'हाय, मैं दलदल में फँस गया हूँ, मेरी जीवन-नाव भंवर के बीच में आई है!' काम विकार के वशीभूत होकर अपने तेज को और शान्ति को नष्ट करने के कारण वह अपने विवेक को तथा सहनशीलता को भी खो बैठता है और क्रोधी स्वभाव का बन बैठता है। देह के आधार पर वह जिसे अपनी स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि मानता है, उनकी इच्छायें पूर्ण करने के लिए वह अधिकाधिक धन पैदा करने का यत्न करता है और थोड़ा धन पाकर अधिक का लोभ करता है और उस अभ्यास से उस लोभी नर की तृष्णा नहीं मिटती और असन्तोष के परिणामस्वरूप वह अशान्ति का अनुभव करता है, जब वह सन्तति पैदा कर लेता है और सुन्दर घर और अधिक धन बना लेता है या कुछ प्रसिद्ध लोगों से अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है तो "मैं सेठ हूँ, चार बच्चों का बाप हूँ, एक ऊंचे खान-दान का व्यक्ति हूँ, बड़े-बड़े लोगों में मेरा उठना-बैठना है" – इस प्रकार का उसे अभिमान हो जाता है। जब ऐसे अभिमानी व्यक्ति को दूसरा कोई उतना मान नहीं देता तो उसके मन को एक चोट लगती है। इस प्रकार आप देखेंगे कि देह-अभिमान ही सभी प्रकार के रोगों, दु:खों, कष्टों और सभी समस्याओं का एक मूल कारण है।

अत: अब परमपिता परमात्मा शिव कहते हैं कि – "हे वत्सो, यदि आप सदा के लिए सम्पूर्ण सुख और शान्ति को चाहते हैं तो इस देह-अभिमान रूपी विष या किटाणु को नाश करने का उपाय करो। इस उद्देश्य से देही-निश्चय अथवा आत्म-निष्ठ बनो और सब देह-धारियों कि तरफ़ से मन की आसक्ति हटाकर एक मुझ ज्योति-स्वरूप परमात्मा शिव ही की स्मृति में स्थित होवो। इस सहज युक्ति से संसार के सारे कष्ट मिट जायेंगे और सतयुगी दैवी सृष्टि स्थापित हो जायेगी, अर्थात् यह संसार सुखधाम, वैकुण्ठ, गार्डन ऑफ फ्लावर्स (फुलों का बग़ीचा) या क्षीर सागर बन जायेगा"।